सीमांत समूहों का आनुभविक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ प्रोफेसर ए.आर.एन श्रीवास्तव

प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत प्रख्यात मानवशास्त्री प्रोफेसर ए.आर.एन. श्रीवास्तव द्वारा सीमांत समूह की अवधारणा तथा उनके आनुभविक समाजशास्त्रीय अध्ययनों की आवश्यकता को प्रकाशित करते हुए ऐसे आनुभाविक अध्ययनों हेतु एक रूपरेखा का रेखांकन किया गया है।

शब्दकोष के अनुसार ''सीमांत'' (मार्जिनल) का अर्थ होता है- एक परिभाषित क्षेत्र की सीमा (बॉर्डर) से जुड़े अपेक्षाकृत स्थायी क्षेत्र के निवासी। आमतौर पर यह क्षेत्र सांस्कृतिक तत्वों, भाषा, सामाजिक एकरूपता, संगठन आदि से परिभाषित किया जाता हैं। विशेषज्ञ सीमान्त समूह की परिभाषा चाहे किसी भी ढंग से करें-एक सामान्य तथ्य सभी स्वीकार करेगें कि ''सीमांत समूह'' वाले दो या अधिक समूहों से किसी भी मायने में प्रभावित होते रहते हैं।

सीमान्त समूह की एक ठोस परिभाषा तय नहीं की जा सकती है। हमें सदैव स्मरण रखना होगा कि कोई भी परिभाषा किसी भी प्रतिपादक को महत्वपूर्ण प्रतीत होने वाले कुछ विशिष्ट गुणों की ओर आकर्षित करती है। चाहे किसी परिभाषा को स्वीकार करें, हम अन्य समूहों (समाज) को उन समूहों के समान पायेगें जो हमारी चुनी गई परिभाषा द्वारा एकत्र कर दी गई है।

सीमांत समूह, संजाति समूह और बहुल समाज
(Marginal, ethnic and plural society)

अनेक समकालीन समाजशास्त्रियों व मानववेत्ताओं की दृष्टि में ''भारतीय समाज'' विभिन्न संजाति समूहों से निर्मित एक बहुल समाज है। अंग्रेजी शब्द 'इथनीक' का हिन्दी रूपान्तर 'संजाति' है। अंग्रेजी भाषा में इसका मौलिक अभिप्राय एक राष्ट्र से जुड़े लोगों से लगाया जाता है जो सामान्य लक्षणों-विशेष तौर पर शारीरिक विशेषताओं से युक्त होते हैं। समकालीन समाजशास्त्री संजाति समूह एवं मानवशास्त्री शब्द का व्यवहार एक ऐसे सामाजिक समुदाय के लिए करते हैं जिसके सदस्य सामान्य परम्परा (संस्कृति) से जुड़े रहते हैं। एक संजाति समूह में परम्परागत (सरल,) समुदायों के साथ आधुनिक जटिल (औद्योगिक) समुदाय भी सम्मिलित किये जाते हैं। सामान्य तौर पर, एक संजाति समूह वाले समान भाषा, समान जीवन शैली, विश्वास एवं परम्पराओं जैसे गुणों को सामूहिक रूप से प्रदर्शित करते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि एक संजाति समूह अनिवार्य रूप से एक ''प्रजातीय प्रकार'' (रेसियल टाईप) नहीं होता है। अर्थात्, एक संजाति समूह में सदस्यगण समान शारीरिक विशेषताओं से युक्त हो भी सकते हैं और नहीं भी। अति संक्षेप में, एक संजाति समूह में उपरोक्त वर्णित लक्षण एक साथ देखे जायें यह आवश्यक नहीं है। अनिवार्य दशा यह है कि एक संजाति समूह यह मानते हों कि वे दूसरे समूह से भिन्न हैं।

समाजशास्त्र में प्रयुक्त बहुल समाज शब्द अपेक्षाकृत नवीन है। इसका आशय एक ऐसे राष्ट्र के समाज से है जिसमें विभिन्न संजाति वाले साथ साथ एक समय में रहते हैं। प्रसिद्ध अमेरिकी समाजशास्त्री एडवर्ड शिल्स ने बहुल समाज की एक दशा निर्धारित की है। इसकी चर्चा उन्होंने अपनी पुस्तक टोरमेण्ट ऑफ सेकरेसी (१९५६) में की थी। शिल्स ने बहुल समाज का प्रयोग एक ऐसी दशा के लिए किया है जहाँ शक्ति का केन्द्र एक से अधिक होता है। साथ ही जहाँ विभिन्न समुदायों की अपनी-अपनी भावना लगभग 'एकान्तता' जैसी होती है। यहाँ लगभग 'एकान्तता' का आशय समुदाय विशेष की विशिष्ट संस्कृति से है। प्रत्येक समुदाय (संजाति समूह) विशिष्ट संस्कृतियुक्त रहते हुए भी दूसरे समुदायों के साथ अनुकूलता बनाए रखते हैं। सभी समुदायों का अंतिम लक्ष्य एक सामान्य उद्देश्य की ओर केन्द्रित रहता है। यह उद्देश्य है-एकीकरण की भावना अथवा एक राष्ट्रवाद की भावना।

उल्लिखित संदर्भानुसार विश्व के सभी राष्ट्र जहाँ एक, से अधिक संजाति समूह हैं, बहुलवादी राष्ट्र कहे जायेंगें। इस अर्थ में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा व यूरोप के अनेक देश (जर्मनी, नीदरलैण्ड, ग्रेट ब्रिटेन) बहुलवादी समाज वाले राष्ट्र हैं। अमेरिका के मूल निवासी रेड इण्डियन कहे गये हैं। अमेरिका में रेड इण्डियन के अतिरिक्त ब्रिटिश, जर्मन, रूसी, जापानी, एशियाई तथा अफ्रीकी देशों के अनेक समुदाय समय के दौरान प्रवासी बन गये। वे सभी पृथक संजाति समूह के रूप में अपनी पहचान बनाये रखें हैं तथापि सभी अपने उक्त राष्ट्र के प्रति (जहाँ के वे नागरिक

❑ सेवानिवृत प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष मानवविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ.प्र.)

हैं) समर्पित हैं।

एक राष्ट्र बहुल संस्कृति वाला होता है, यदि वहाँ विभिन्न संजाति समूह वाले एक साथ रहते हैं। सभी संजाति समूह अपनी पहचान बनाये रखने के साथ-साथ एक सामान्य उद्देश्य की ओर उन्मुख रहते हैं। अफ्रीका एवं एशिया के अनेक नवोदित राष्ट्र बहुल समाज की ओर उन्मुख कहे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए मलेशिया, इन्डोनेशिया और भारत। इन राष्ट्रों का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न संजाति समूहों के बीच एक सामान्य जागरूकता का निर्माण करना है। विख्यात अमरीकी मानवशास्त्रीय क्लीफर्ड गिर्ज ने इन्डोनेशिया के संदर्भ में लिखी अपनी पुस्तक में इस प्रकार की विचारधारा को प्रतिपादित किया है। (देखिये ओल्ड सोसायटी एण्ड न्यू स्टेट्स, १९६३)

अति संक्षेप में, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार, बहुल समाज का अर्थ है एक राष्ट्रीय स्तर का समाज (नेशन स्टेट्स) जो संजाति समूहों से निर्मित होता है और अपनी अलग-अलग पहचान बनाये रखने के साथ-साथ सामान्य तौर से एकीकरण की भावना से युक्त रहने की ओर प्रेरित रहते हैं।

कभी-कभी एक प्रश्न उठाया जाता है कि समकालीन भारत में संजाति समूहों की संख्या कितनी है? यह बताना सहज नहीं हैं क्योंकि एक नाम वाला संजाति समूह देश के एक ही क्षेत्र में नहीं रहता है और यह भी देखा जाता है कि एक संजाति समूह देश के विभिन्न क्षेत्रों में एक से अधिक नामों से सम्बोधित किया जाता हैं। नामकरण में एकरूपता होने के बावजूद विभिन्न क्षेत्रों के एक ही समूह कुछ अर्थों में भिन्न हो जाते हैं। अतएव इन्हें 'दो' या अधिक समूह माना जाये या एक ही समूह की दो उपशाखाएँ इसमें मतभेद है। भारतीय जनगणना विभाग ने समस्त देश की जनसंख्या को तीन कोटियों में वर्गीकृत किया है। ये हैं

(१) सामान्य जनसमूह,
(२) अनुसूचित जनजाति एवं
(३) अनुसूचित जातियां।

स्वतंत्र भारत में अखिल भारतीय स्तर पर निश्चित तौर पर समुदायों को निरूपित करने का प्रथम प्रयास भारतीय मानव सर्वेक्षण विभाग ने १९८५ में किया । १९९२ वर्ष के आरम्भ में इस विभाग ने पीपुल ऑफ इण्डिया शीर्षक वाली पुस्तक के प्रथम खण्ड में रोचक तथ्य प्रकाशित किया। इसके आधार पर सम्प्रति देश में दो हजार सात सौ पंचानवें (२७९५) मूल समुदाय (संजाति समूह) हैं। इसमें उपभाग भी सम्मिलित हैं, जो मूल समुदायों के अंग हैं। इस प्रकार मूल समुदाय और उपभाग वाले समुदायों को मिलाकर कुल ४६३५ समुदाय हैं। संवैधानिक कोटियों के अनुसार पीपुल ऑफ इण्डिया पुस्तिका के अनुसार समुदायों का वितरण निम्न हैं:

१. अनुसूचित जातियाँ	-	७५१
२. अनुसूचित जनजातियाँ	-	६३५
३. अन्य पिछड़े वर्ग के समुदाय	-	१०४६
४. अन्य सामान्य वर्ग	-	२२०३

पीपुल ऑफ इण्डिया पुस्तिका में वर्णित ४६३५ समुदायों में अनेकानेक ''सीमान्त समूह'' वाले हैं। इन समूहों का अध्ययन आनुभविक ढंग से किस प्रकार हो-इसका रेखांकन इस शोधपत्र के अंतिम भाग में किया गया है।

आनुभविक शोध विधियों का वर्णन अनेक पाठ्य पुस्तकों में हुआ है। हमारे विचार में कोई भी शोध तीन प्रकार का हो सकता हैं-

१. एथनोग्राफिक जनवृतान्तिक शोध (नन्-सर्वे)
२. सर्वे शोध
३. प्रयोगात्मक शोध

सीमान्त (या संजाति) समूह पर आनुभविक कार्य करने के लिए उपर्युक्त तीनों में प्रथम दो को केन्द्रित किया जा सकता है। सामाजिक-सांस्कृतिक मानवशास्त्री एथनोग्राफिक और समाजशास्त्रीय सर्वे शोध पर विशेष बल देते रहे हैं।

यदि हमें सर्वे शोध करना है तो पीपुल ऑफ इण्डिया के आंकड़े कारगर ढंग से सहायक हो सकते हैं। (देखिए परिशिष्ट में वर्णित आंकड़ों का नमूना)

उदाहरण के लिए :

१. क्षेत्र का चुनाव/सीमान्त क्षेत्र का चयन
२. समूहों का चुनाव
३. समग्र (यूनिवर्स) की पहचान
४. तार्किक ढंग से निर्दशन का चुनाव
५. प्राप्त निष्कर्षों को विभिन्न क्षेत्रों में पड़ने वाले समूहों से तुलना (क्रास कल्चरल परीक्षण)
६. उपयुक्त सांख्यिकी परीक्षणों द्वारा पुष्टिकरण

एक उदाहरण लें

यदि हमें एक सर्वे शोध पूर्वी उत्तर-प्रदेश जो कि बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ राज्यों के भौगोलिक क्षेत्र से जुड़ा है, के द्वारा यह निर्धारित करना है कि इस क्षेत्र में सीमान्त

समूह वाले कौन और कितनी संख्या में हैं तो हम निम्न ढंग से पता लगा सकते हैं।

१. इस क्षेत्र के भौगोलिक मानचित्र का अवलोकन करें। उत्तर प्रदेश उन जिलों की सीमा से जुड़े बिहार, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ के जिलों को देखना होगा। निश्चित रूप से इसी क्षेत्र के कतिपय या अधिकांश संजातीय समूह वाले सीमान्त समूह होगें।

२. अब हम 'पीपुल ऑफ इण्डिया प्रोजेक्ट' के आंकड़ों को लें। उपर्युक्त वर्णित क्षेत्रों की सूची पर दृष्टिपात करें। हमें आसानी से पता चल जाता है कि इन राज्यों में समुदायों की संख्या कितनी है और ये समुदाय कौन हैं?

३. 'पीपुल ऑफ इण्डिया' के उस खण्ड को देखें जहां इन समुदायों के विषय में संक्षेप में एक 'परफौर्मा' के अन्दर जन-वृतान्त दिया गया है। हमें थोड़ा समय लग सकता है लेकिन यह पता चल जाता है कि उन जिलों में रहने वाले समुदाय और सीमान्त में रहने वाले समुदाय कौन हैं?

४. हमें यूनिवर्स तय करने में कठिनाई नहीं होनी चाहिये। इसी यूनिवर्स में हम कुछ समुदायों का निदर्शन प्रणाली से चयन कर सकते हैं जो पक्षपात रहित होगा। इस तरह से अनुसंधानकर्ता क्षेत्रीय कार्य सम्पन्न कर आवश्यकतानुसार तथ्यों का संकलन कर सकते हैं और अपना काम आगे बढ़ा सकते हैं।

संक्षेप में हम यह कहना चाहते हैं कि अब समय आ गया है कि समाज विज्ञानियों को अपनी शोध प्रणाली को और कारगर ढंग से उपयोग करें। यह कहना कि अमुक क्षेत्र में तथ्यों का अभाव है अथवा कोई शोध कार्य नहीं हुआ है उचित नहीं होगा। शोध कार्य हुये हैं। पूर्व में वे बिखरे हुये थे। अब उन्हें कोड के अनुसार प्रकाशित कर दिया गया है। ये सभी प्रकाशन 'पीपुल ऑफ इण्डिया' के विभिन्न खण्डों में उपलब्ध है।

संदर्भ

१. एडवर्ड शिल्स, 'टोरमेण्ट आफ सेकरेसी' न्यूयार्क, १९५६

२. क्लीफर्ड गिर्ज, 'ओल्ड सोसायाइटी एण्ड न्यू स्टेट्स', शिकागो, १९६३

३. सिंह के.एस., 'पीपुल ऑफ इण्डिया' (संपादक), आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली वर्ष : १९९२-२००९ (अब तक ४० से अधिक खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।)

मानव विकास और भारत : एक अध्ययन

❑ डा० वीरेन्द्र कुमार शर्मा

मानव विकास एक वृहद अवधारणा है। इसके अन्तर्गत जीवन प्रत्याशा, प्रति व्यक्ति आय, साक्षरता दर, सकल नामांकन अनुपात, जीवन की गुणवत्ता, गरीबी रेखा के नीचे की जनसंख्या व शहरीकरण प्रमुख अवयव हैं। इन सबको समेकित कर औसत रूप में मानव विकास सूचकांक को सृजित किया जाता है। इन सूचकांकों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञात होता है कि मानव विकास की दृष्टि से कौन सा राष्ट्र श्रेष्ठ है तथा कौन सा राष्ट्र पिछड़ा। इससे जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय विकास अन्तराल का अध्ययन किया जाता है वहीं राष्ट्रीय स्तर पर राज्यों के विकास अन्तराल को भी मापा जा सकता है। प्रस्तुत आलेख मानव विकास के संदर्भ में भारत की स्थिति को उजागर करने का एक प्रयास है।

समूची दुनिया के १८७ देशों में मानव विकास सम्बंधित अध्ययन किया गया। जिसमें २०११ में भारत १३४वें स्थान पर एवं २०१३ में १३६वें स्थान पर रहा। मानव विकास सूचकांक स्वास्थ्य, शिक्षा व आय के स्तर पर यू०एन०डी०पी० द्वारा तैयार कराया जाता है जिसमें मानव विकास सूचकांक मूल्य (HDI Value) ०-१ के मध्य होता है। वर्ष २०१३ की स्थिति के अनुसार कम मानव विकास वाले देश की HDI Value ०.५३६ तक मध्यम मानव विकास वाले देश की HDI Value ०.५३६ से ०.७१० तक, उच्च मानव विकास देश की HDI Value (०.७१०-०.७९६) तथा अति उच्च मानव विकास वाले देश की HDI Value ०.७९७ से १.०० के मध्य में हो सकती है। मानव विकास सूचकांक मूल्य के २०१३ के अनुसार नार्वे दुनिया का अतिउच्च मानव विकास (HDI Value-०.९५५) वाला देश है जबकि सबसे निम्न मानव विकास वाले देश १८६वें स्थान पर क्रमशः दो देश-कांगों गणराज्य (HDI Value-०.३०४) व नाइजर (HDI Value-०.३०४) हैं।

मानव विकास की अवधारणा- मानव विकास सूचकांक समग्र रूप में जानने व समझने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि मानव विकास की अवधारणा क्या है?इनमें कौन-कौन से अवयव समाहित हैं? अतः इसका अध्ययन और विश्लेषण होना चाहिए।

यू०एन०डी०पी० की मानव विकास रिपोर्ट १९९७ के अनुसार, ''मानव विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जनमानस के विकल्पों का विस्तार किया जाता है और इसके द्वारा उच्च कल्याण स्तर को प्राप्त किया जाता है। यही मानव विकास की धारणा का मूल तत्व है। ऐसे सिद्धान्त न ही स्थैतिक होते हैं और न ही सीमाबद्ध।''[1]

वर्ष १९९० में यू०एन०डी०पी० के मानव विकास रिपोर्ट के प्रथम प्रकाशन व संवर्धन के समय मकबूब उल हक ने मानव विकास की माप की निम्नलिखित तीन अवधारणायें विकसित कीं-[2]

१. मानव विकास सूचकांक (HDI)
२. लिंग सम्बंधित विकास सूचकांक (GDI)
३. मानव निर्धनता सूचकांक (HPI)

१. मानव विकास सूचकांक (HDI)- मानव विकास सूचकांक तीन मूल अवयवों की औसत दर है- (A) जन्म पर प्रत्याशित आयु, B(1) बालिग साक्षरता दर, B(2) संयुक्त नामांकन अनुपात, (C) प्रति व्यक्ति सकल देशी उत्पाद (क्रय शक्ति US$)। मानव विकास सूचकांक के परिकलन हेतु सूचकांक के उच्चतम व न्यूनतम मूल्य का चयन किया जाता है-

तालिका सं. १

सूचकांक हेतु अधिकतम व न्यूनतम मूल्य[3]

सूचकांक	अधिकतम मूल्य	न्यूनतम मूल्य
जन्म पर जीवन प्रत्याशा	८५	२५
बालिग साक्षरता दर	१००	६
कुल नामांकन अनुपात	१००	६
प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (क्रयशक्ति US$)	४००००	१००

आयाम सूचकांक $= \frac{\text{वास्तविक मूल्य - न्यूनतम मूल्य}}{\text{अधिकतम मूल्य - न्यूनतम मूल्य}}$

❑ प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, गन्ना कृषक महाविद्यालय, पूरनपुर, पीलीभीत (उ०प्र०)

तालिका सं. २

विभिन्न वर्षों में चुने हुए देशों के लिए मानव विकास सूचकांक की स्थिति[४]

देश	HDI Value				
अति उच्च मानव विकास	1975	1980	1990	2011	2013
नार्वे	0.856	0.875	0.899	0.943	0.955
सं०रा०अमेरिका	0.861	0.882	0.912	0.910	0.937
कनाडा	0.867	0.882	0.925	0.908	--
जापान	0.851	0.876	0.907	0.901	0.912
इंग्लैण्ड	0.839	0.846	0.876	0.863	0.875
उच्च मानव विकास					
सऊदी अरब	0.587	0.647	0.706	0.770	0.782
मलेशिया	0.614	0.657	0.720	0.761	0.769
रूस	--	--	0.604	0.755	0.788
ब्राजील	0.641	0.676	0.710	0.710	0.730
मध्यम मानव विकास					
चीन	0.522	0.553	0.624	0.687	0.699
मिस्र	0.433	0.481	0.573	0.644	0.662
भारत	0.406	0.433	0.510	0.547	0.554
श्रीलंका	0.614	0.648	0.695	0.691	0.715
निम्न मानव विकास					
नाइजर	0.234	0.253	0.254	0.295	0.304

तालिका सं० २ से ज्ञात होता है कि नार्वे दुनिया का अति उच्च मानव विकास वाला देश रहा है। यह १९७५ से २०१३ तक HDI Value के आधार पर सर्वश्रेष्ठ रहा है। HDI Value के रूप में कुछ प्रमुख राष्ट्र इस प्रकार हैं, जिनमें सं.राज्य अमेरिका, कनाडा, जापान, दक्षिण कोरिया, यू०के० प्रमुख हैं। कुछ अन्य प्रमुख राष्ट्र हैं जिनमें HDI Value काफी हद तक संतोषजनक हैं, वे हैं- सऊदी अरब, मेक्सिको, मलेशिया, वेनुजुएला, ब्राजील, ईरान। उल्लेखनीय है कि श्रीलंका ने मध्यम मानव विकास सूचकांक का सफर १९७५ से २०११ तक किया किन्तु २०१३ में वह उच्च मानव विकास सूचकांक ०.७१५ (HDI Value) हासिल कर श्रेष्ठ राष्ट्रों की सूची में शामिल हो गया। मध्यम मानव विकास के देश हैं- चीन, फिलीपींस, मिस्र, इण्डोनेशिया, वियतनाम, भारत, पाकिस्तान, बंग्लादेश व निम्न मानव विकास वाले देश हैं- नाइजीरिया, नाइजर आदि। भारत की स्थिति १९९४ में १३८वें नम्बर पर थी जो २०११ में १३४वें नम्बर तथा २०१३ में १३६वें नम्बर पर है। भारत की HDI Value में १९७५ में ०.४०६, १९८० में ०.४३३, १९९० में ०.५१०, २०११ में ०.५४७ तथा २०१३ में ०.५५४ पर स्थित है। भारत में मानव विकास सूचकांक में सुधार हेतु अभी काफी लम्बा सफर तय करना है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) की वर्ष २०१३ की मानव विकास रिपोर्ट जो १४ मार्च २०१३ को 'द राइस आफ साऊथ' ह्यूमन प्रोग्रेस इन ए डाइवर्स वर्ल्ड' शीर्षक से प्रकाशित हुई। जिसमें मानव विकास सूचकांक (HDI) मल्टी डायमेंशनल पावर्टी इण्डेक्स (MPI) तथा जेंडर इनइक्वेलिटी इण्डेक्स (GII/GDI) सम्मिलित किया गया। उक्त रिपोर्ट के अनुसार मानव विकास सूचकांक की दृष्टि से प्रथम १० राष्ट्र निम्नवत् है:-

तालिका सं. ३

मानव विकास की दृष्टि से पहले १० राष्ट्र[५]

क्र.सं.	राष्ट्र	मानव विकास सूचकांक
१	नार्वे	०.९५५
२	आस्ट्रेलिया	०.९३८
३	अमेरिका	०.९३७
४	नीदरलैण्ड	०.९२१
५	जर्मनी	०.९२०
६	न्यूजीलैण्ड	०.९१९
७	आयरलैण्ड	०.९१६
८	स्वीडन	०.९१६
९	स्विटजरलैण्ड	०.९१३
१०	जापान	०.९१२

२. लिंग सम्बंधी विकास सूचकांक (GDI) –लिंग सम्बंधी विकास सूचकांक पुरूषों व स्त्रियों के मध्य असमानता को दर्शाता है। इस हेतु त्रिआयामी व्यवस्था की गई है–

स्त्रियों में जन्म पर जीवन प्रत्याशा

स्त्री बालिग साक्षरता एवं कुल नामांकन अनुपात

स्त्री प्रति व्यक्ति आय

उल्लेखनीय है कि यदि लिंग भिन्नता नहीं होगी तो मानव विकास सूचकांक व लिंग सम्बंधी विकास सूचकांक बराबर होंगे। यदि लिंग असमानता होगी तो लिंग सम्बंधी सूचकांक मानव सूचकांक से कम होगा। अध्ययनों एवं आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कुछ देशों में लिंग समानता की स्थिति सृजित है, वे देश हैं- नार्वे, कनाडा, अमेरिका, इण्लैण्ड, जापान, मेक्सिको, मलेशिया, वेनुजुएला, फिलीपींस, चीन, वियतनाम, इण्डोनेशिया आदि प्रमुख हैं। कुछ देशों में जहां लिंग असमानता दिखाई देती है। वे देश हैं- सऊदी अरब, ईरान, भारत, मिस्र, नाइजीरिया। लिंग असमानता दूर करने हेतु कई देशों में स्त्री शिक्षा प्रोत्साहन व संरक्षण कार्य किये जा रहे हैं। अभी इस दिशा में काफी प्रयास किया जाना शेष है। भारत में इस दिशा में काफी प्रयास किया जा रहा है।

३. मानव निर्धनता सूचकांक (HPI) – मानव निर्धनता सूचकांक का विकास १९९७ में मानव विकास रिपोर्ट में किया गया जिसके अन्तर्गत तीन प्रमुख अवयव सम्बद्ध किये गये–

(a) HPI_1– जन्म पर ४० वर्ष की आयु तक जीवित न रहने की प्रत्याशा

(b) बालिग साक्षरता दर

(c) उन्नत जल साधनों का प्रयोग करने वालों का प्रतिशत २- ५ वर्ष से कम आयु वाले कम वजन वाले बच्चों का प्रतिशत

कुछ अन्य देशों (OECD) के लिए मानव निर्धनता सूचकांक इस प्रकार तैयार किया गया–

HPI_2

(a) जन्म पर ६० वर्ष की आयु तक जीवित न रहने की संभावना

(b) कार्यात्मक साक्षरता कौशल के अभाव वाले बालिगों का प्रतिशत

(c) आय निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत

(d) दीर्घकालीन बेरोजगारी दर

अध्ययनों एवं विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि मानव निर्धनता सूचकांक नाइजर में ५५.८ प्रतिशत, पाकिस्तान में ३३.४ प्रतिशत, बांग्लादेश में ३६.१ प्रतिशत, भारत में २८ प्रतिशत, मिस्र में २३.४ प्रतिशत है। आय निर्धनता के सापेक्ष मानव निर्धनता सूचकांक बेहद व्यापक व एक के सापेक्ष तीन चरों पर आधारित है।

मानव विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु २०१५ के लिए संयुक्त राष्ट्र की सहस्राब्दी घोषणा की गई, जिनमें प्रमुख बिन्दु निम्नवत् हैं:-

१. १ डालर से कम पर जीवन निर्वाह करने वाली विश्व जनसंख्या के अनुपात को आधा करना।
२. सुरक्षित पेयजल से वंचित विश्व जनसंख्या को आधा करना।
३. भुखमरी से ग्रस्त विश्व जनसंख्या के अनुपात को आधा करना।
४. सर्वव्यापक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को पूर्ण करना।
५. शिक्षा की उपलब्धि में लिंग समानता की स्थिति उत्पन्न करना।
६. मातृ मृत्यु दर ७५ फीसदी कम करना।
७. एच०आई०वी०, मलेरिया, अन्य बीमारियों को रोकना व समाप्त करना।

भारत में राज्यों के लिए मानव विकास सूचकांक सृजित करना अत्यन्त जरूरी है जिसमें विभिन्न राज्यों के मध्य अन्तर को समझा जा सके। UNFDA ने अपनी रिपोर्ट 'भारत-जनसंख्या और विकास लक्ष्यों की ओर १९९७' में

प्रकाशित की। इस अध्ययन में मानव विकास के तीन आयाम प्रस्तुत किये गये-

१. जीवन प्रत्याशा का सूचकांक,

२. प्रति व्यक्ति आय

३. साक्षरता व स्कूल नामांकन अनुपात

महबूब उल हक[६] ने दक्षिण एशिया में मानव विकास (१९९७) में उक्त तीन आयामों का माना किन्तु तीसरे आयाम में स्कूल नामांकन अनुपात को महत्व नहीं दिया। विश्वजीत गुहा ने उक्त अध्ययनों में संशोधन करते हुए तीन नये आयाम जोड़े-

१. जीवन की गुणवत्ता,

२. गरीबी रेखा के नीचे की जनसंख्या

३. नगरीकरण

जीवन की गुणवत्ता से अभिप्राय- सुरक्षित पेयजल उपलब्धता, बिजली कनेक्शन, पूरे वर्ष दोनों समय का भोजन, पक्के मकान में रिहायश व सरकारी अस्पताल में उपलब्ध बिस्तर से है।

उक्त तीनों अध्ययनों का समेकित विश्लेशण निम्नवत् है:-

तालिका सं. ४

राज्यवार मानव विकास सूचकांक का मूल्य[९]

राज्य	UNFDA	महबूब उल हक	विश्वजीत गुहा १९८८-९४
केरल	62.79 (1)	59.7 (1)	74.33 (1)
महाराष्ट्र	55.49 (2)	51.3 (3)	59.24 (2)
पंजाब	54.86 (3)	51.6 (2)	57.36 (4)
तमिलनाडु	51.11 (4)	43.2 (8)	57.53 (3)
हरियाणा	50.56 (5)	47.4 (4)	53.75 (5)
गुजरात	47.82 (6)	45.8 (5)	52.48 (6)
कर्नाटक	46.83 (7)	44.2 (7)	52.24 (7)
पं० बंगाल	45.37 (8)	45.2 (6)	51.33 (8)
आन्ध्र प्रदेश	41.28 (9)	39.3 (9)	46.82 (9)
असम	39.48 (10)	37.4 (10)	44.25 (10)
मध्य प्रदेश	36.71 (11)	34.1 (15)	41.56 (14)
उडीसा	37.25 (12)	36.8 (11)	43.18 (11)
राजस्थान	37.11 (13)	35.03 (13)	42.56 (12)
उ०प्र०	35.51 (14)	34.3 (14)	41.06 (15)
बिहार	34.05 (15)	35.04 (12)	42.14 (13)

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि राज्यों में मानव विकास सूचकांक में भारी अन्तर है। UNFDA ने अपनी उच्च ६२.८ निम्न मूल्य ३४.० रखा, महबूब उल हक ने उच्च व निम्न सीमा क्रमशः ५९.७ व ३४.१ रखी, डा० गुहा की सीमाएं क्रमशः ७४.३३ व ४१.१ के बीच में हैं। इससे स्पष्ट होता है कि राज्यों में मानव विकास सूचकांक में काफी अन्तराल में विद्यमान है।

भारत में मानव विकास सम्बंधित कुछ प्रमुख सूचकांक राज्यवार निम्नवत् है:-

तालिका सं. ५[६]

राज्य	शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर २००४-०५ से २००९-१०	गरीबी रेखा के नीचे की जनसंख्या का प्रतिशत	बेरोजगारी १९९९-२००० से २००९-१०	जन्मदर २०१०	मृत्यु दर २०१०	शिशु मृत्यु दर २०१०
पंजाब	7.7	15.9	6.5	16.6	7	34
महाराष्ट्र	11.5	24.5	6.3	17.1	6.5	28
हरियाणा	10	20.1	5.5	22.3	6.6	48
गुजरात	10.5	23.0	5	21.8	6.7	44
प०बंगाल	5.77	26.7	7.0	16.8	6.0	31
कर्नाटक	8.2	23.6	4.2	19.2	7.1	38
केरल	8.7	12.0	16.7	14.8	7.0	13
तमिलनाडु	10.0	17.1	11.7	15.9	7.6	24
आन्ध्रप्रदेश	8.6	21.1	7.0	17.9	7.6	62
म०प्र०	6.9	36.7	6.5	27.3	8.3	62
असम	5.2	37.9	6.5	23.2	8.2	58
उ०प्र०	6.7	37.7	5.3	28.3	8.1	61
उड़ीसा	7.9	37	7.9	20.5	8.6	61
राजस्थान	6.9	24.8	3.3	26.7	6.7	55
बिहार	6.9	24.8	3.3	26.7	6.7	55
भारत	**--**	**29.8**	**6.6**	**22.1**	**7.2**	**47**

उक्त तालिका से ज्ञात होता है कि कुछ प्रमुख राज्यों में मानव विकास सूचकांक श्रेष्ठ है परन्तु काफी राज्यों में सूचकांक की स्थिति दयनीय है। अस्तु ऐसे प्रयत्न करने होंगे जिससे राज्यों में मानव विकास सूचकांक की असमानता अत्यन्त कम हो जाये।

किसी भी देश में स्वास्थ्य पर व्यय का विशेष महत्व है। विकसित व विकासशील देशों में स्वास्थ्य पर व्यय का आकलन निम्नवत् है-

तालिका सं. ६[१०]

जी.डी.पी. का प्रतिशत/ वर्ष २०१०

देश	सार्व० क्षेत्र	निजी क्षेत्र	कुल व्यय
आस्ट्रेलिया	6.2	2.9	9.1
नार्वे	8.1	1.4	9.4
यू०के०	8	1.6	9.6
अमेरिका	8.5	9.1	17.6
मेक्सिको	2.9	3.3	6.2
इण्डोनेशिया	1.3	1.3	2.6
ब्राजील	4.2	4.8	9.0
भारत	1.2	2.9	4.1
चीन	2.7	2.4	5.1
साउथ अफ्रीका	3.9	5.6	8.9

उक्त आंकड़ो से ज्ञात होता है कि अमेरिका सकल घरेलू उत्पाद का १७.६ प्रति० स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करता है जबकि भारत ४.१ प्रति० खर्च करता है।

मानव विकास के अध्ययन से यह पता चलता है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत सारे राष्ट्र मानव विकास के क्रम में पीछे है। राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो भारत में कुछ प्रमुख राज्यों को छोड़कर काफी राज्य पिछड़े हुए हैं, कुछ तथ्य निम्नवत् हैं:-

१. निम्न मानव विकास के साथ उच्च आय- हरियाणा
२. उच्च मानव विकास के साथ निम्न आय- केरल
३. तीव्र आर्थिक विकास किन्तु निम्न मानव विकास- राजस्थान
४. आर्थिक विकास व मानव विकास दोनों को आगे बढ़ाते हुए-पंजाब, गुजरात, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल
५. आर्थिक विकास व मानव विकास पर नीचा प्रभाव डालते- म०प्र०, उ०प्र०, उड़ीसा, बिहार।

आन्ध्र प्रदेश, उ०प्र०, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार राज्य निम्न आर्थिक विकास व निम्न मानव विकास के दुष्चक्र में फंस गये हैं। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि ऐसी व्यूह रचना की जाये जिससे विकास का नीचे रिसाव (Tricle down Approach) के स्थान पर तीव्र उत्तरोत्तर विकास हो सके। इस हेतु कुछ प्रभावी कदम उठाने होंगे-

१. रोजगार सृजन को प्रोन्नत किया जाये
२. ऐसे ढ़ाचों का विकास हो जो समतावादी विकास को बढ़ावा दे सकें (Equatilable Growth)
३. जिसमें सहयोगी विकास की धारणा हो (Participatory Growth)
४. जिसमें जमीनी विकास प्रोन्नत हो सके (Gross root Growth)
५. स्वास्थ्य शिक्षा में भारी निवेश की आवश्यकता है।

अतः स्पष्ट होता है कि तीव्र, आर्थिक विकास से तीव्र मानव विकास किया जा सकता है। इसमें कोई अन्तर्विरोध नहीं है। यह एक दूसरे के पूरक हैं। भारत को इन दोनों में संतुलन स्थापित करना होगा।

सन्दर्भ

१. दत्त एवं सुन्दरम, 'भारतीय अर्थव्यवस्था', एस. चान्द एण्ड कं., नई दिल्ली, २०१३, पृ. ४४
२. वही, पृ. ४४
३. वही, पृ. ४५
४. दत्त एवं सुन्दरम, पूर्वोक्त, पृ. ४६; 'भारतीय अर्थव्यवस्था', प्रतियोगिता दर्पण, आगरा २०१३, पृ. ७७
५. 'भारतीय अर्थव्यवस्था', प्रतियोगिता दर्पण, आगरा २०१३, पृ. ७७
६. दत्त एवं सुन्दरम, पूर्वोक्त, पृ. ४६
७. वही, पृ. ४६
८. वही, पृ. ५०
९. दत्त एवं सुन्दरम, पूर्वोक्त, पृ. ५५
१०. इकोनामिक सर्वे २०१२-१३, मिनिस्ट्री ऑ फाइनेन्स, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, पृ. २७२

नारी और मानवाधिकार – एक समाजशास्त्रीय विवेचन

❑ डा. संगीता पाण्डेय

समाज का सर्वांगीण विकास तभी संभव होगा जब समाज में लिंगभेद के आधार पर कोई विषमता न हो। स्वतंत्र भारत के संविधान में प्रत्येक आधार पर समानता की बात कही गयी है परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है। महिलाओं के प्रति मानवाधिकार का उल्लंघन स्वतंत्रता के ६४ वर्षों के बाद भी रूकने का नाम नहीं ले रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को मानवाधिकारों के प्रति जागरूक किया जाय ताकि वे समाज में और अधिक प्रताड़ित न हो। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत भारत में महिला मानवाधिकारों की स्थिति, उनके हनन के कारणों तथा मानवाधिकार हनन रोकने के उपायों का विश्लेषण किया गया है।

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो मानव जीवन के लिये वांछनीय हैं। व्यक्ति की स्वतंत्रता और सम्मान के लिए आवश्यक हैं। भारत में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, १९९३ में भारतीय संसद में पारित किया गया और इसके अनुसार (धारा २ घ) 'मानवाधिकारों का तात्पर्य संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संविदाओं में सन्निहित व्यक्तियों की प्राण स्वतंत्रता, समानता और गरिमा से सम्बन्धित ऐसे अधिकारों से है जो भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।'

प्रमुख रूप से जीवन जीने का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, अत्याचार और उत्पीड़न से रक्षा का अधिकार, कानून के समक्ष समता का अधिकार, वैचारिक और धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, सहमति के आधार पर विवाह का अधिकार, मताधिकार का अधिकार, राजनीति में भाग लेने का अधिकार, आदि आते हैं।

प्रस्तुत शोध लेख भारतीय समाज की महिलाओं और मानवाधिकार प्राविधानों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन है। मानवाधिकार के सैद्धान्तिक पहलू के आधार पर यहाँ यह जानने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार महिलाओं के लिए मानवाधिकार सहायक सिद्ध हो रहे हैं। अध्ययन के लिए गोरखपुर नगर की २५० महिलाओं को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर चुना गया जो १८ वर्ष ६० वर्ष की आयु की हैं तथा सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं। मतदाताओं से सूचना प्राप्त करने के लिए एक साक्षात्कार अनुसूची बनायी गयी जिसके आधार पर अध्ययनकर्ताओं ने स्वयं उत्तरदाताओं से सम्पर्क कर प्रश्नों का उत्तर प्राप्त कर किया। तथ्यों के सामान्यीकरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

भारतीय समाज को पुरुष प्रधान समाज भी कहा जाता है। यहाँ पुरुषों और स्त्रियों के सभी कार्यक्षेत्र और अधिकार अलग-अलग ढंग से समय-समय पर परिभाषित होते रहे हैं। भारतीय स्त्रियों को आजीवन अनेक निर्योग्यताओं को झेलना पड़ता है। बालविवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, बहुपत्नी विवाह, भ्रूण हत्या, दहेज, घरेलू हिंसा, बलात्कार आदि समस्याएँ महिलाओं से जुड़ी हैं। समाज का सर्वांगीण विकास तभी संभव होगा जब समाज में लिंगभेद के आधार पर कोई विषमता न हो। स्वतंत्र भारत के संविधान में प्रत्येक आधार पर समानता की बात कही गयी है परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है। महिलाओं के प्रति मानवाधिकार का उल्लंघन स्वतंत्रता के ६४ वर्षों के बाद भी रूकने का नाम नहीं ले रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को मानवाधिकारों के प्रति जागरूक किया जाय ताकि वे समाज में और अधिक प्रताड़ित न हो सकें।

''पुरुषों ने महिलाओं को अव्यक्त व्यक्तित्व प्रदान कर अपनी कृत्रिम गरिमा को कायम रखने का सदैव प्रयास किया। पुरुष रचित रीति रिवाजों में महिला अर्द्धांगिनी और अनुगामिनी बनकर रह गयी। उसका कार्यक्षेत्र परिवार की चहारदीवारी तक सीमित कर दिया गया है।''[1] सामाजिक व्यवस्था में नारी ने अपना उत्थान और पतन दोनों देखा है। जहाँ एक ओर उसे पूज्यनीय, वंदनीय, ममतामयी, प्रेरणादायिनी कहा गया वहीं उसे कुलटा, पतिता, कुलक्षिणी और कुलघातिनी आदि शब्दों से भी संबोधित किया गया है।

समाज के उद्भव के समय सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप अनिश्चित था। खानाबदोशी जीवन था। अनियंत्रित यौन सम्बन्ध की स्थिति में मातृसत्तात्मक परिवार प्रणाली का प्रचलन स्वाभाविक था। स्वाभाविक था कि इस प्रकार की परिवार प्रणाली में महिलाओं की प्रस्थिति श्रेष्ठ होगी। लोग एक स्थान पर स्थायी रूप से रहने लगे। विवाह संस्था को स्वीकृति मिली। तत्पश्चात पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली का प्रचलन प्रारंभ हुआ। इस परिवार प्रणाली के साथ ही

❑ समाजशास्त्र विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)

महिलाओं की सामाजिक दशा में भी गिरावट प्रारम्भ हो गयी। कालान्तर में महिलाओं को पति की दासी और सन्तान उत्पन्न करने का यन्त्र बना दिया। किसी-किसी महिला ने दर्जनों बच्चों को जन्म दिया।

वैदिक युग में प्रमाण मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि उस समय महिलाएं स्वतंत्र थीं। पुरुषों के समाज में वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकती थीं।[२] परिवार में पुत्री का जन्म शुभ माना जाता था। पर्दाप्रथा का प्रचलन नहीं था। स्मृतियों के काल में महिलाओं की स्थिति हेय हुई। मनुस्मृति में कहा गया है, कि एक महिला को बाल्यावस्था में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहना चाहए।[३] स्मृतियों में लिखा गया है कि कन्या को वेदाध्यन और उपनयन संस्कार संपादित नहीं करना है। पैतृक सम्पत्ति में भी पुत्री का हक समाप्त माना गया। महिलाएँ सार्वजनिक यज्ञ और हवन में भाग नहीं ले सकती थीं। पुत्री, स्त्री को दास समान माना गया। महिलाओं को शूद्र शब्द से सम्बोधित किया गया। काम और क्रोध से वशीभूत न केवल मूर्ख अपितु विद्वान पुरुष को भी स्त्री कुमार्ग पर ले जाती है।[४] कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में लिखा है, कि स्त्रियों में अनेक प्रकार की मूर्खताएं विद्यमान हैं। वे अविश्वसनीय, चंचल एवं अशुभ हैं। अर्थशास्त्र में लिखा है कि वेश्यावृत्ति राज्य द्वारा संचालित होती थी और उससे प्राप्त आय दुर्ग कहलाती थी। इतिहास के विकास क्रम में आक्रमणकारियों के भय से नारी की सुरक्षा के नाम पर नारी की स्वतंत्रता भी लुप्त हो गयी। आक्रमणकारियों से रक्षा में असमर्थ होने की आशंका के आधार पर कन्या को जन्म के समय ही मार देने की परम्परा प्रारम्भ हो गयी। कन्या की बाल्यावस्था में ही विवाह की परम्परा प्रारम्भ कर दी गयी। पुराणों में वर्णन है कि पति के मृत्यु के साथ ही स्त्री को भी सती होना है। इस प्रकार सती प्रथा का भी प्रचलन प्रारम्भ हो गया।[५]

मौर्यकाल में महिलाओं की दशा में सुधार हुआ। समाज में उनका आदर और सम्मान होता था। पत्नी अपने पति के साथ धार्मिक कार्यों एवं सामाजिक समारोहों में भाग लेती थीं। कुछ कुलीन स्त्रियों का उल्लेख है जिन्होंने बौद्ध एवं जैन धर्म का भी प्रचार किया। मैगस्थनीज ने लिखा है कि महिलाओं को विधवा विवाह तथा विवाह विच्छेद का अधिकार प्राप्त था। वे पारिवारिक संपत्ति में हिस्सा प्राप्त करती थीं। राज्य की तरफ से स्त्रियों की सुरक्षा और उनके अधिकारों के पति विशेष ध्यान दिया जाता था। घरेलू हिंसा की स्थिति में स्त्री न्यायालयों का शरण ले सकती है। न्यायालय द्वारा अपराधियों को कठोर दंड दिया जाता था। गुप्तकाल में स्त्रियों का सम्मान था। वे वेदों का अध्ययन कर सकती थीं। ललित कलाओं में महिलाओं को दक्षता प्राप्त थी। उच्च घरों की महिलाओं ने अनेक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर रह कर सफलतापूर्वक अपनी-भूमिकाओं का संपादन किया। यद्यपि सती प्रथा का कलंक भी इसी काल को लगता है। मध्य काल में स्त्रियों की प्रस्थिति में में तेजी से गिरावट आयी। पर्दा प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। मुसलमान शासक रूपवती स्त्रियों को बलपूर्वक महलों में ले जाकर उनका सतीत्व भंग करते थे। मुसलमानों की इसी दृष्टि के कारण बाल विवाह का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। मुसलमानों की वासनात्मक मनोवृत्ति के कारण बहुपत्नीत्व प्रथा सशक्त हो गयी। अंग्रेजों के शासनकाल में भी महिलाओं से जुड़ी समस्याएँ पूर्ववत बनी रहीं। अंग्रेज यह जानते थे कि अधिक दिनों तक यदि दूसरे देश पर शासन करना है तो वहां की प्रथा और परंपरा पर कोई विवाद न खड़ा किया जाय। समाज सुधार आन्दोलन के द्वारा नारी समस्याओं के निराकरण का प्रयास किया गया।[६] राजाराममोहन राय ने सती प्रथा को समाप्त करने का बीड़ा उठाया। विवेकानन्द तथा दयानन्द सरस्वती का प्रयास भी स्त्रियों की दशा सुधारने में महत्वपूर्ण रहा। ईश्वरचंद विद्यासागर के प्रयास से स्त्री शिक्षा को बढ़ावा मिला। महात्मा गांधी का विचार था कि महिला को शिथिल एवं अबला कहना पुरुष की विकृत दृष्टि एवं परिसीमितता का परिचय है। वे मानते थे कि नारी में पुरुष से अधिक नैतिक शक्ति है जो सभी शक्तियों से अधिक महत्वपूर्ण है। गांधी बालविवाह, दहेजप्रथा एवं सती प्रथा के विरोधी थे तथा विधवा पुनर्विवाह के पक्षधर थे। आज एक ओर महिलाओं के प्रताड़ना शोषण आदि के विरुद्ध कानून बन गए हैं वहीं दूसरी ओर नारी उत्पीड़न की आपराधिक घटनाएँ निरंतर बढ रही हैं। फेमिना पत्रिका के दिसम्बर १९९१ के अंक में लिखा था कि आजादी के बाद महिलाओं की स्थिति सुधरी है। कुछ महिलाएँ जीवन के हर क्षेत्र में आगे आयी हैं। फिर भी स्त्री, पुरुष असमानता विद्यमान है। महिलाओं का उत्पीड़न, दमन, उपेक्षा, घरेलू हिंसा आज भी जारी है। स्त्री पुरुष में असमानता, बालिका भूण हत्या के लिए भी जिम्मेदार है।

नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार, बलात्कार की घटनाओं में भी उत्तर प्रदेश में वृद्धि हुई है। बलात्कार की घटनाएं उत्तर प्रदेश में वर्ष २००३ में ९११ थी, २०११ में

बढ़कर १६६३ हो गई। इसी प्रकार मोलेस्टेशन की घटनाएं भी तीन गुना तेजी से बढ़ीं।

वर्ष	बलात्कार	मोलस्टेशन
२००३	६११	१०६८
२०११	१६६३	७६६१

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो-२०१२ के आंकड़े

NCRB के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि उत्तर प्रदेश में प्रतिमाह लगभग १८७ बहुओं की हत्या होती हैं। दहेज हत्याएं जो वर्ष २००३ में १३२२ थी, २०१२ में २२४४ रिकार्ड की गई।७० प्रतिशत की बढ़ोत्तरी महिलाओं के मानवाधिकारों की हीन स्थिति को स्पष्ट करती है।

दहेज हत्याएं तथा महिलाओं के विरुद्ध क्रूरता की घटनाएं भी बढ़ीं हैं जैसा कि उत्तरप्रदेश के ६ जिलों के आंकड़ों से स्पष्ट है-

वर्ष-२०१०	दहेज हत्याएं
मुजफ्फरनगर	२४१
मेरठ	४८४
बिजनौर	२७०
सहारनपुर	१४०
बागपत	६५
शामली	६७

ये आंकड़े सभी समुदायों से हैं जो स्पष्ट करते हैं कि नारियों के विरुद्ध हिंसा सभी समुदायों में व्याप्त है।

भारतीय दंड संहिता धारा ३७६ के अन्तर्गत बलात्कार दंडनीय अपराध है जिसमें अपराधी को आजीवन कारावास हो सकता है। अपहरण, बालिकाओं से छेड़छाड़ दहेज हत्या, महिलाओं के साथ मारपीट, बालिका भ्रूण हत्या एवं सामान्य उत्पीड़न आदि समस्याएँ आज समाज में अधिकाधिक देखने को मिल रही हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद १५ और १६ स्त्री-पुरुष भेद को नकारते हैं। अनुच्छेद ३६ के अन्तर्गत स्त्री को भी पुरुष के समान जीविका के पर्याप्त साधन प्रदान करने की बात तय की है। अनुच्छेद ३६ क में व्यवस्था है कि समान कार्य के लिए पुरुष और स्त्री को समान वेतन मिलेगा। अनुच्छेद ३२५ में पुरुषों के समान स्त्रियों को भी मतदान का अधिकार होगा।[७]

भारतीय दण्ड संहिता में भी व्यवस्था है कि -

(१) महिला शरीर को छूने का अधिकार केवल महिला पुलिस को है।

(२) पुरुष अधिकारी स्त्री को बताने के पश्चात उससे पूछताछ कर सकता है।

(३) गिरफ्तार स्त्री की तलाशी शिष्टता का पूरा ध्यान रख कर अन्य स्त्री अधिकारी द्वारा ही की जायेगी।

(४) स्त्री की शारीरिक परीक्षा केवल पंजीकृत महिला चिकित्सा अधिकारी द्वारा ही की जाएगी।

(५) पुलिस बयान के लिए महिला थाने नहीं आएगी।

(६) सूर्योदय से पूर्व और सूर्यास्त के बाद महिला थाने नहीं बुलाई जायेगी। गिरफ्तारी के बाद महिला के पास उसके परिवार का कोई व्यक्ति (महिला या पुरुष) रहेगा।

(७) गर्भवती स्त्री का मृत्युदंड स्थगित रहेगा अथवा उसे आजन्म कारावास में बदला जा सकता है।[८]

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के कारण प्राप्त हैं। मानवाधिकार का संबंध व्यक्ति की गरिमा से है। आत्मसम्मान न केवल व्यक्ति के लिए आवश्यक है अपितु समाज को आगे बढ़ाने के लिए भी आवश्यक है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ ने १८ दिसम्बर, १६४८ को वैश्विक मानवाधिकार की घोषणा की। इस घोषणा पत्र में सभी मनुष्यों के लिए गण/मानवाधिकार में जीवन का अधिकार, यातना के विरुद्ध अधिकार, दासता के विरुद्ध अधिकार, स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार, कानून के समक्ष समानता का अधिकार, विचार अंतरात्मा एवं धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, राय रखने का अधिकार, शांतिपूर्ण समूह बनाने का अधिकार, एसोसिएशन बनाने की स्वतंत्रता का अधिकार, मत देने, लोकसेवा में चुने जाने का अधिकार, किसी भी व्यवसाय को चुनने का अधिकार, कार्य करने का अधिकार, उचित कार्यदशा का अधिकार, श्रमिक संघ बनाने का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, उचित जीवन ढंग का अधिकार, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार। स्वतंत्र भारत के संविधान में भी मौलिक अधिकारों का उल्लेख है, जो मानवाधिकारों को इंगित करता है। भारत में १६६३ में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत मानवाधिकार आयोग उपरोक्त कार्यों को करेगा।

यह विडंबना ही है कि भारतीय समाज में जबकि शक्ति का प्रतीक दुर्गा, धन का प्रतीक लक्ष्मी तथा ज्ञान का प्रतीक सरस्वती मानी गयी हैं अर्थात ज्ञान, वैभव और शक्ति का स्रोत जब स्त्रियों को माना गया तब भी भारतीय समाज में स्त्रियों

की दशा हेय है और उन्हें अनेक संरक्षणों की आवश्यकता पड़ रही है। नारी की जिस कोख ने सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन किया, उसी कोख को बलात्कार, यौन उत्पीड़न और वेश्यावृत्ति का कुप्रभाव झेलना पड़ता है। जो नारी विभिन्न परिस्थितियों में पुरुष को ममता, स्नेह, समर्पण और वात्सल्यता का सुख देती है उसे पुरुषों के ही हाथों अपमानित होना पड़ता है। भारतीय समाज में नारी एक जीवित विसंगति है, एक जीवित विडम्बना है, जीवित व्यथा है जिसकी दशा में सुधार के प्रयास अभी भी वास्तविक नहीं बन पाये हैं। महिलाओं के मानवाधिकार हनन का प्रारम्भ बालिका भ्रूणहत्या से होता है।

'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में प्रकाशित (१० अक्टूबर,२०१३) एक रिपोर्ट के अनुसार-''उत्तर प्रदेश के आंकड़ों के अनुसार प्रतिदिन ३३० अजन्मी कन्याओं की हत्या होती है। खराब मातृ सेवाओं के कारण ४६ महिलाओं की मौत, दहेज के कारण ६ महिलाओं की मौत होती है। इस प्रकार प्रतिदिन लगभग ३८२ महिलाओं की मौत इन विभिन्न कारणों से होती है।'' युनाइटेड नेशन्स पापुलेशन फंड के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि कन्या भ्रूण हत्याएं उत्तर प्रदेश में अत्यधिक हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की स्थिति अत्यधिक खराब है।

इन आंकड़ों को बल तब मिलता है जब हम जनगणना में गिरते स्त्री-पुरुष अनुपात को देखते है। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित एक अन्य रिपोर्ट (११ अक्टूबर, २०१३) के अनुसार ० से ६ वर्ष तक जीवित लड़कियों का इसी उम्र के प्रति एक हजार लड़कों की तुलना में अनुपात केवल ६०२ है। यह आंकड़े २००१ की जनगणना के अनुसार ६१६ थे।

जनगणना वर्ष	०-६ वर्ष तक जीवित लड़के तथा लड़की अनुपात	
	लड़के	लड़की
२००१	१०००	६१६
२०११	१०००	६०२

विगत दस वर्ष में १४ पॉइन्ट्स की गिरावट नारी मानवाधिकारों की स्थिति स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

उपभोक्तावादी संस्कृति का बाहुल्य भी इसके लिए उत्तर दायी है। नारी की आर्थिक परतंत्रता भी उसके अधिकारों के हनन में जिम्मेदार है। संचार माध्यम और मुख्य रूप से चलचित्र तथा टेलीविजन भी महिलाओं की छवि विकृत कर रहे हैं। प्रत्येक प्रचार की वस्तु पर अकारण स्त्री का चित्र जोड़ दिया जाता है। पश्चिमीकरण के प्रभावों से प्रभावित भारतीय महिलाएं भी अपने शरीर का नग्न प्रदर्शन आधुनिकता की पहचान मान रही हैं। इसके कारण भी इन्हें अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है।

संविधान के अन्तर्गत सरकार ने स्त्रियों की दशा में सुधार के लिए अनेक कानून बनाए हैं फिर भी उनके ठीक से प्रभावी न होने के कारण महिलाओं के उत्पीड़न की घटनाएँ निरन्तर होती रहती हैं।

मानवाधिकारों से वंचन के कारण (कुल २५० महिला उत्तरदाता)

कारण	उत्तरदाता प्रतिशत
विधानों का अप्रभावी होना	४०
विधानों की जानकारी न होना	३५
जागरूकता का अभाव	२३
कोई स्पष्ट कारण नहीं	२

प्रस्तुत अध्ययन में ४० प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि महिलाओं से संबंधित विधानों के अप्रभावी होने के कारण स्त्रियां मानवाधिकारों से वंचित हो रही हैं। ३५ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि लोगों को विभिन्न विधानों की जानकारी न होना महिलाओं के मानवाधिकार का कारण है। २३ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि जागरूकता का अभाव इसके लिए जिम्मेदार है। २ प्रतिशत उत्तरदाता कोई भी स्पष्ट कारण देने में समर्थ नहीं थे। २६ प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना था कि सशक्त जनमत ही महिलाओं को मानवाधिकार हनन से छुटकारा दिला सकता है। अतः जनमत जागृत अभियान चलाया जाना चाहिए। ३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना था कि महिलाओं से संबंधित विधानों का प्रभावी प्रयोग होना चाहिए। ३८ प्रतिशत महिलाओं का कहना था कि उन्हें स्वयं संगठन बनाकर अपने हितों की रक्षा के लिए संघर्ष करना चाहिए।

मानवाधिकार हनन रोकने के उपाय-

उत्तरदाता	प्रतिशत
महिलाओं से सम्बन्धित प्रभावी विधानों का होना	३३
महिला संगठनों का प्रभावशाली होना	३८
सशक्त जनमत का होना	२६

न्यायालयों की भूमिका पर असंतोष व्यक्त करते हुए ७८ प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना था कि भारतीय न्याय प्रणाली चूँकि साक्ष्यों पर निर्भर है अतः वह महिलाओं के विरुद्ध हो रहे अनेक अपराधों में प्रभावी नहीं हो पाती। बलात्कार, घरेलू हिंसा, रेप आदि के मामले में पीड़ित साक्ष्य

कहां से लाए? अतः साक्ष्य के अभाव में दोषी छूट जाते हैं। लोकलाज के भय से भी अनेक मामले प्रकाश में नहीं आ पाते। परिणाम स्वरूप स्त्रियों को परिणम भुगतना पड़ता है। ६० प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत था कि यहाँ की सामान्य शिक्षण प्रणाली रोजगारपरक नहीं है। अतः शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों प्रकार की महिलाओं को खामियाजा भुगतना पड़ता है। स्त्रियों के लिए रोजगारपरक शिक्षा उनके मानवाधिकार हनन समस्याओं को दूर करने में सहायक सिद्ध होगी। कुछ गैर सरकारी संगठन स्त्रियों की दशा में सुधार हेतु बने हैं। वे कार्य भी कर रहे हैं परन्तु ८० प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत था कि वे ठोस तथा प्रभावकारी कार्य करने में अभी भी असफल हैं। गैर सरकारी संगठनों के अप्रभावकारी होने के पीछे उनकी कमजोर वित्तीय स्थिति भी है। अपराधी तथा सफेदपोश, नौकरशाह, बड़े व्यापारी घराने के बिगड़ैल तथा जन्मजात विचलनकारी व्यक्ति जो महिलाओं के मानवाधिकार हनन के लिए उत्तरदायी होते हैं उनका मुकाबला अधिक धन, बल से ही किया जा सकता है। ५० प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि गैर सरकारी संगठन सहायक होना चाहते हैं परन्तु धन की कमी उन्हें सफल होने नहीं देती। सुझाव स्वरूप उत्तरदाताओं का मत था कि सरकार ऐसे संगठनों की मदद करे ताकि वे प्रभावी हो सकें। यह पूछे जाने पर कि क्या महिलाएं भी महिलाओं के मानवाधिकार हनन में सहायक हैं इसके उत्तर में उत्तरदाताओं का मानना था कि १५ प्रतिशत महिलाएं मनोवैज्ञानिक कारणों से दूसरी महिलाओं को प्रताड़ित कराती हैं। १८ प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि स्त्रियों में व्याप्त ईर्ष्या इसके लिए जिम्मेदार है। २२ प्रतिशत उत्तरदाता का मत है कि स्त्रियाँ असुरक्षा की भावना से ऐसा करती हैं। जबकि ४५ प्रतिशत उत्तरदाता न्यूनाधिक अंशों में सभी कारकों को उत्तरदायी मानती हैं।

मानवाधिकार हनन के सामाजिक कारण-(कुल-२५० महिला उत्तर दाता)

कारण	उत्तरदाता प्रतिशत
गरीबी	५०
पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली	३३
प्रथाएं परम्पराएं	६
दहेज	८

उत्तरदाताओं में से ५० प्रतिशत का मानना था कि गरीबी, ३३ प्रतिशत का मत था पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली, ६ प्रतिशत का मत था कि प्रथा और परंपरा जबकि ८ प्रतिशत का मत था कि दहेज महिलाओं के मानवाधिकार हनन का कारण है।

महिलाओं को संसद और विधानसभाओं में ३३ प्रतिशत आरक्षण का विरोध अनेक राजनैतिक दल कर रहे हैं। इसका क्या कारण है। इसके उत्तर में ३५ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत था कि पुरुष मानसिकता इसके लिए जिम्मेदार है। जो महिलाएं गर्भपात करायी हैं उनमें २४ प्रतिशत का मत था कि उन्होंने पारिवारिक दबाव के कारण ऐसा किया। १७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि वे अधिक बच्चा नहीं चाहतीं इसलिए उन्होंने गर्भपात कराया। उत्तरदाताओं में से ४६ प्रतिशत ने बताया कि वे मानवाधिकर हनन को पुलिस के संज्ञान में लाने के पक्ष में हैं जबकि ५४ प्रतिशत उत्तरदाता इसके पक्ष में विभिन्न कारणों से नहीं हैं। उत्तरदाताओं में से कुछ का मानना है कि दण्ड की प्रक्रिया कुंद है इसलिए बहुत उम्मीद नहीं की जा सकती। २३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह कहा कि पुलिस रिपोर्ट दर्ज नहीं करती इसलिए प्रताड़ना की घटनाएं और बढ़ रही हैं। उत्तरदाताओं का मानना है कि पुलिस कर्मी अपहरण, बलात्कार आदि में वैधानिक कार्यवाही पूरी निष्ठा से नहीं करते। न्यायालयों में अधिक विलंब से फैसला होता है इस पर ८० प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि समय से न्याय नहीं मिलता है। १७ प्रतिशत उत्तरदाताओं का यह मत है कि न्यायालय न्याय दिलाने में प्रभावशाली नहीं है। १५ प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि न्याय महंगा होता जा रहा है। ५ से ७ वर्ष तक का समय एक 'केस' में लग जाता है। फिर भी न्याय नहीं मिलता। ''अधिक धनी अपराध करके बच जाते हैं क्योंकि पैसे रूपये से वे न्याय खरीद लेते हैं। पैसा कमाने के लिए बड़े से बड़े वकील अपराधियों की पैरवी करते हैं। १९८८ ई. में महिलाओं को त्वरित न्याय दिलाने के उद्देश्य से महिला सहायता प्रकोष्ठ स्थापित किया गया है। इस संस्था को सशक्त होने में समय लगेगा।''[११]

महिलाओं में मानवाधिकार हनन रोकने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रभावकारी हो सकते हैं जिन्हें प्रस्तुत अध्ययन में सामान्यीकरण स्वरूप में प्राप्त किया है -

१ महिलाओं को उनके साथ हो रहे अपराधों के बारे में जागरूक करने की आवश्यकता है। जब महिलाएँ स्वयं अपने हितों के प्रति जागरूक हो जाएंगी तब उन्हें आपराधिक घटनाओं से मुक्ति मिल सकेगी।

२ घरेलू हिंसा अधिनियम की पूरी जानकारी समाज के लोगों को करायी जाय। इससे घरेलू हिंसा में कमी आएगी। कमजोर वर्ग के लोगों में देखा गया है कि वे नशे की दशा में जब होते हैं तो स्त्रियों के साथ मारपीट करते हैं जब उन्हें मालूम होगा कि इन कृत्यों के लिए भी वैधानिक दंड की व्यवस्था है तो वे दंड से डरेंगे और पत्नियों के साथ होने वाली हिंसात्मक गतिविधियाँ कम होंगी और कालान्तर में पूरी तरह समाप्त भी हो सकेगी।

३ शैक्षणिक संस्थाओं के पाठ्यक्रम में कहानियों के माध्यम से विद्यार्थियों को महिलाओं के प्रति हो रहे दुराचरण को बताकर उनमें उस मनोवृत्ति को उभरा जाय ताकि वे बड़े होकर परिवार में घरेलू हिंसा न करें।

४ सरकार लोक अदालतों के माध्यम से परिवार में सौहार्द्र उत्पन्न करने का प्रयास करती है। पारिवारिक विवादों को मिलजुलकर समझौता कराने का प्रयास भी होता है। इससे न केवल पारिवारिक विघटन रुकता है। अपितु सामाजिक विघटन होने से भी बच जाता है।

५ गैर सरकारी संगठनों को सक्रिय किया जाना चाहिए ताकि महिलाओं के प्रति हो रहे दुराचार समाप्त हों। गैरसरकारी संगठन अनौपचारिक ढंग से चूँकि इस क्षेत्र में प्रयास करेंगे। इसलिए उन्हें सरकारी क्षेत्र की तुलना में अधिक सफलता मिलने की आशा रहेगी।

६ महिला अधिकारी जहाँ तक संभव हो सके नियुक्त होने चाहिए जो महिला उत्पीड़न का फैसला करें। इससे महिला उत्पीड़न संबंधी घटनाओं में कमी आएगी।

७ पंचायती राज व्यवस्था में जिस प्रकार महिलाओं के लिए स्थान सुरक्षित किया गया है उसी प्रकार विधानसभओं तथा संसद में भी होन चाहिए। महिला सशक्तीकरण के लिए यह आवश्यक है। जो राजनैतिक दल संसद तथा विधानसभा में आरक्षण का विरोध कर रहे हैं उनके विरुद्ध महिलाओं को आवाज उठाना चाहिए तथ भावी चुनावों में उन्हें वोट नहीं देना चाहिए। यह खेद का विषय है कि जिस देश में आधी संख्या महिलाओं की है वहाँ १० प्रतिशत महिलाएं भी विधानसभा तथा संसद में नहीं पहुंच पातीं। देश का विधान जहाँ बनता है उस संस्था में प्रचुर मात्रा में भागीदारी ही स्त्रियों के मानवाधिकारों की रक्षा कर सकेगी।

८ कार्ल मार्क्स का शाश्वत सिद्धांत है कि 'आर्थिक पहलू ही जीवन के क्रियाकलापों को नियंत्रित एवं निर्देशित करते हैं।' को स्वीकार करते हुए महिलाओं को आर्थिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर बनाना चाहिए तभी महिलाओं के मानवाधिकारों की रक्षा हो सकेगी।

९ राष्ट्रीय महिला आयोग को और अधिक सक्रिय होना होगा। जहाँ कहीं भी महिलाओं के साथ अन्याय हो रहा हो वहाँ तुरन्त महिला आयोग को कार्यवाही करना चाहिए। उन क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना चाहिए जो दुर्गम स्थानों में हैं। जनजातीय क्षेत्रों में चूंकि यातायात और संचार की अभी भी पर्याप्त व्यवस्था नहीं है अतः उन क्षेत्रों में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

१० पीड़ित महिलाओं के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। महिला उत्पीड़न से संबंधित जनहित मामलों में त्वरित फैसला होना चाहिए।

सन्दर्भ

१ देसाई नीरा, 'वीमेन इन मार्डन इंडिया', १९८९, एशिया, दिल्ली पृ.७९

२ पी.वी. काणे, 'धर्मशास्त्र का इतिहास', खंड-२, भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूर्णे, १९९८, पृ. ७८२

३ मनुस्मृति,६/९२

४ अल्टेकर ए.एस., 'पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन', मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, पृ.५६

५ राधाकृष्णन, 'धर्म और समाज', चेतक पब्लीकेशन हाउस दिल्ली, पृ. ११६

६ टालस्टाय, 'धर्म और सदाचार', सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी पृ. १०

७ गोखले वी.जी., 'इंडियन थाट थ्रू दी एजेज', एशिया दिल्ली, पृ.२५

८ अंसारी एम.ए., 'महिला और मानवाधिकार', पृ. २६९

९ सिंह वी.पी., 'भारत में मानवाधिकार समस्या', पृ.५७

१० सक्सेना शोभा, 'महिलाओं के प्रति अत्याचार और संरक्षक कानून', पृ.३०

११ मेहता चेतन, 'महिला एवं कानून', आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृ. ३२

१२ 'टाइम्स ऑफ इंण्डिया' १० अक्टूबर,२०१३, ११ अक्टूबर,२०१३ लखनऊ एडिशन।

दलितों पर अत्याचार : एक अध्ययन

❑ डॉ. श्रीमती इन्दु ठाकुर
○ जितेन्द्र कुमार चौधरी

दलित एक विशुद्ध भारतीय अवधारणा है, जिसका प्रयोग संवैधानिक रूप से परिभाषित अनुसूचित जातियों और जनजातियों के उस समूह से लिया जाता है, जो तथाकथित रूप से उपेक्षा, शोषण और उत्पीड़न का शिकार हुआ है। आजकल 'दलित' शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के लिये किया जा रहा है जिन्हें अमानवीय व्यवहार, अन्याय, भेदभाव, सामाजिक निर्योग्यताओं, सामाजिक प्रताड़ना, राजनीतिक एवं आर्थिक वंचनाओं और असुविधाओं के लम्बे दौर से गुजरना पड़ा है। 'दलित वर्ग' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग १९२०-३० के आस-पास हुआ, किंतु १९७३ के बाद यह एक जनसामान्य शब्द बन गया।[१]

बहुत समय से विशेष चिह्नित वर्गो एवं समुदायों के प्रति की गई सुनियोजित हिंसा भारतीय समाज का विशिष्ट लक्षण रहा है। जातिगत हिंसा के निशाने पर बहुधा वही लोग होते हैं जो हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के सोपान में सबसे निचले क्रम पर आते हैं जो अनुसूचित जातियों अथवा दलितों के नाम से जाने जाते हैं। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है कि दलित जातियों पर होने वाला अत्याचार अभी समाप्त नहीं हुआ अपितु यह नगरीय एवं ग्रामीण समाज में अभी भी दिखाई देता है।

'दलित' से यहाँ आशय उन लोगों से है, जो संविधान की धारा-३४१ (१) तथा (२) के अंतर्गत अनुसूचित जाति की श्रेणी में रखे गए हैं। देश में इनकी संख्या करीब चौदह करोड़ (१३.८२) है। संविधान में इनकी अलग पहचान, इनकी सामाजिक निर्योग्यताओं एवं आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने तथा इन्हें विशेष सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से निर्मित की गई है। गरीबी, गन्दगी, बीमारी और अशिक्षा की शिकार ये जातियाँ समाज से बहिष्कृत और नागरिक अधिकारों से वंचित रही हैं। आज भी दरिद्रता की रेखा के नीचे जीने वाले परिवारों में अनुसूचित जातियों का अनुपात देश की सम्पूर्ण जनसंख्या में इनके अनुपात से कहीं बहुत ज्यादा है। इनमें आधे से अधिक लोग भूमिहीन अथवा छोटे व सीमांत कृषक हैं। जो आजीविका के लिए कृषि, मजदूरी पर निर्भर करते हैं। अभी हाल तक इनमें अधिकांशतः अपने भू-स्वामी के यहाँ पूर्णतः या अंशतः बंधुआ मजदूर थे। ये खाल निकालने और चमड़े का काम, नाली और गली की सफाई जैसे गन्दे और कम आमदनी वाले काम करते रहे हैं। आज भी दलित अधिकांशतः अभावग्रस्त और दरिद्र हैं।

अत्याचार : मोटे तौर पर अत्याचार से आशय सभी प्रकार के शोषण और उत्पीड़न से है, जो गैर दलितों द्वारा गरीब, कमजोर और अपनी रक्षा करने में असमर्थ दलित जातियों के लोगों के ऊपर ढाए जाते है। सामान्यतः अत्याचार की श्रेणी में हत्या, बलात्कार, आगजनी तथा हिंसा संबंधी अधिक गंभीर किस्म के अपराध शामिल किए जाते हैं, जिससे पीड़ित व्यक्ति को गम्भीर किस्म की शारीरिक क्षति अथवा हानि उठानी पड़ती है। अत्याचार निवारण अधिनियम (१९८९) के तहत् अत्याचार के अंतर्गत अनुसूचित जातियों के विरूद्ध गैर अनुसूचित जातियों द्वारा अस्पृश्यता के भेदभाव सहित किये गये सत्ताइस प्रकार के अपराधों को सम्मिलित किया गया है। मौटे-तौर पर अनुसूचित जातियों के विरूद्ध गैर अनुसूचित जातियों द्वारा किये गये वे सभी अपराध जो जिला अनुसूचित जाति कल्याण प्रकोष्ठ में भारतीय दण्ड संहिता, नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम (१९५५) तथा अत्याचार निवारण अधिनियम (१९८९) के अंतर्गत पंजीबद्ध किये गये हैं, अत्याचार की श्रेणी में आते हैं।

अत्याचारों की प्रकृतिः अत्याचार की प्रकृति बाध्यता मूलक होती है, चाहे उसका स्वरुप भेदभाव जनित हो, शोषण मूलक हो अथवा उत्पीड़नात्मक। इसमें दबे या खुले रूप में शक्ति का प्रयोग किया जाता है। अत्याचारी वर्ग की समाज में स्थिति अच्छी होती है। सामान्यतः अत्याचार शक्तिशाली वर्ग द्वारा अपने हितों पर चोट पहुँचाने वालों को दबाने के लिए किए जाते हैं। दबाव की मात्रा, प्रकृति एवं स्वरूप में समय, स्थान एवं सन्दर्भ (अत्याचार व पीड़ित व्यक्ति अथवा समूहों की संख्या, शक्ति तथा स्थानीय पुलिस एवं प्रशासन की तत्परता व कार्य क्षमता) के अनुसार भिन्नता हो सकती है। इस प्रकार अत्याचार में उच्च व शक्ति सम्पन्न वर्गो द्वारा समाज के आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से कमजोर वर्गो जो अपनी सुरक्षा करने में अशक्त होते हैं के विरूद्ध किए गए अपराधों को शामिल किया जाता है।

❑ समाजशास्त्र विभाग, हितकारिणी महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
○ शोध अध्येता, नेट जे.आर.एफ., समाजशास्त्र, एवं समाज कार्य विभाग, रानी दुर्गावती वि.वि., जबलपुर (म.प्र.)

दलितों पर अत्याचारों की सूची बहुत लम्बी है और अत्याचारों के स्वरूप अनेक हैं, विस्तृत अर्थ में अत्याचार से यहाँ आशय सभी प्रकार के अन्याय, शोषण, पीड़ा एवं त्रास से है, जो समाज में कमजोर वर्गो जो अपनी रक्षा करने में असमर्थ होते हैं, पर ढ़ाए जाते हैं। इनमें- निन्दा, गाली, धमकी, सामाजिक बहिष्कार, भूमि पर कब्जा न देना, तथा शारीरिक क्षति पहुँचाना जैसे मारना आदि शामिल है। किंतु विश्लेषण में सुविधा की दृष्टि से सरकारी अभिलेखों में दलितों के विरूद्ध साधारण प्रकृति के अपराधों को अस्पृश्यता व अन्य अपराधों की श्रेणी में रखा जाता है। अत्याचार की श्रेणी में केवल हत्या, बलात्कार, आगजनी, दंगा तथा हिंसा जैसे गम्भीर अपराधों को ही शामिल किया जाता है।

पूर्व अध्ययन की समीक्षा :

जैन सनत कुमार[३] ने बड़ा तहसील में 'हरिजनों पर अत्याचार' अपने लघुशोध के अध्ययन के दौरान पाया कि दलितों की स्थिति में उपयुक्त सुधार नहीं हो पाया है। संवैधानिक सुधारों के उपरांत और अधिक अत्याचारों में वृद्धि हुई है जिसका कारण परम्परावादी पुरानी विचारधाराएँ प्रमुख हैं, तथा अत्याचार से हरिजनों की समाज में अत्यंत निम्न एवं दीनहीन स्थिति है।

सिंह बलबीर[४] ने 'हरिजनों का आपराधिक उत्पीड़न' नामक अपने लघुशोध अध्ययन के दौरान पाया कि अपराधों से पीड़ित व्यक्ति प्रौढ़ वर्ग वाले रहे हैं। वयस्क तथा प्रौढ़ जो कि परम्परागत व्यवस्था को नहीं मानना चाहते वही अधिकतर उत्पीड़न का शिकार होते हैं। इनके अध्ययन में सबसे अधिक पीड़ित व्यक्तियों में 'चमार' जाति के लोग थे।

अध्ययन का उद्देश्य : जबलपुर जिले के दलितों से संबंधित प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित रहे हैं:-

१. सन् २००० से २०१० तक पंजीबद्ध मामले और उनका निर्णय ज्ञात करना।
२. अत्याचारों की अपराधबार स्थिति को जानना।
३. अत्याचार से पीड़ित व्यक्तियों का आयु समूह ज्ञात करना।
४. अत्याचारों से अधिकतम पीड़ित जाति की पहचान करना।

अध्ययन विधि एवं अध्ययन क्षेत्र : प्रस्तुत शोध प्रपत्र द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है, जिसमें जबलपुर अनुसूचित जाति कल्याण प्रकोष्ठ में पंजीबद्ध ग्यारह वर्षीय (२००० से २०१० तक) आँकड़ों को सम्मिलित किया गया है।

सारणी - १

पीड़ित दलित (अनसूचित जाति) द्वारा पंजीबद्ध कराये गये मामलों का निर्णय।[५]

सन्	दर्ज मामलों की संख्या	दोष सिद्ध	बरी	राजीनामा	विचारधीन
२०००	७१	१	११	१	५८
२००१	५०	७	७	२	३४
२००२	६८	१०	८	२	४८
२००३	४६	७	५	२	३२
२००४	५८	६	१४	७	३१
२००५	४६	७	२७	२	१०
२००६	५६	१३	३०	-	१३
२००७	५७	१३	३०	५	०६
२००८	४७	१०	२३	४	१०
२००९	५२	१८	२१	३	१०
२०१०	६९	८	२७	५	२९
कुल	**६२०**	**१००**	**२०३**	**३३**	**२८४**
प्रतिशत	**१००%**	**१६.१३%**	**३२.७४%**	**५.३२%**	**४५.८०%**

सारणी क्र. १ - सन् २००० से २०१० तक ६२० मामले पंजीबद्ध हुए, जिसमें १०० (१६.१३ प्रतिशत) व्यक्ति दोषी पाये गये। २०३ (३२.७४ प्रतिशत) व्यक्ति बरी हुए। ३३ (५.३२ प्रतिशत) ने राजीनामा किया तथा २८४ (४५.८० प्रतिशत) मामले अभी भी विचाराधीन हैं जिनके निर्णय अभी नही आये हैं। अतः सारणी से ज्ञात होता है कि कुल ६२०

में से १००(१६.१३ प्रतिशत) मामलों में व्यक्तियों का दोषी पाया जाना तथा २८४ (४५.८० प्रतिशत) मामलों का विचाराधीन होना न्यायप्रणाली की शिथिलता को प्रदर्शित करता है।

सारणी - २

अत्याचार की अपराधबार स्थिति[५]

सन्	हत्या	हत्या प्रयास	मारपीट, चोट, जाति अपमान, आगजनी अन्य	बलवा	बलात्कार	शीलभंग	अपहरण	कुल
२०००	५	२	४१	२	१०	११	–	७१
२००१	३	१	३७	–	६	३	–	५०
२००२	४	५	४०	–	६	६	१	६८
२००३	३	४	२०	–	६	६	१	४६
२००४	५	३	२६	१	११	१०	२	५८
२००५	२	४	२०	१	८	१०	१	४६
२००६	१	४	२१	३	१२	१३	२	५६
२००७	३	५	२६	२	५	१२	१	५७
२००८	२	४	१६	३	१०	६	–	४७
२००९	७	६	१६	१	११	१०	१	५२
२०१०	३	६	२७	२	१४	५	२	६६
कुल	**३८**	**४४**	**२६६**	**१५**	**१०५**	**१११**	**११**	**६२०**
प्रतिशत	**६.१२**	**७.०८**	**४७.७५**	**२.४१**	**१६.६४**	**१७.६०**	**१.७७**	**१००**

सारणी क्र. २ - सन् २००० से २०१० तक पीड़ित दलितों द्वारा पंजीबद्ध कराये गये ६२० मामलों में ३८ (६.१२%) हत्या, ४४ (७.०८ %) हत्या के प्रयास, २६६ (४७.७५ %) मारपीट, चोट आगजनी आदि से संबंधित है। तथा १०५ (१६.६४ %) बलात्कार तथा १११ (१७.६०%) शीलभंग के तथा १५ (२.४१%) बलवा और ११ (१.७७%) अपहरण के मामले पंजीबद्ध हुए।

यदि सारणी में प्रदर्शित दलित महिलाओं के प्रति बलात्कार शीलभंग, अपहरण की संख्या को जोड़ा जाये तो यह २२७ होती है जो कि महिलाओं के विरूद्ध अत्याचारों की गंभीरता को दिखाती है।

सारणी - ३

अत्याचार से पीड़ित दलितों का आयु समूह[५]

क्रं.	सन्	०-६	६-१२	१२-१८	१८-२४	२४-३०	३०-३६	३६-४२	४२-४८	४८-५४	५४ से अधिक	कुल
1.	2000			10	10	24	12	5	5	3	2	71
2.	2001			3	8	15	10	8	1	2	4	50
3.	2002		2	8	12	19	10	5	6	4	2	68
4.	2003		1	10	10	8	10	1	2	2		46
5.	2004		3	13	14	14	8	1	5			58
6.	2005		2	9	13	7	5	4	4	1		46
7.	2006	2	1	20	9	12	3	6	1	1		56
8.	2007		1	10	11	13	11	10		1		57
9.	2008		2	7	12	12	5	6	1	1		47
10.	2009		1	11	13	14	4	4	3	2		52
11.	2010		2	2	1	10	12	12	7	3	1	69
	कुल	2	15	122	122	150	90	57	31	18	8	620
प्रतिशत		0.322	2.419	19.67	19.67	24.19	14.51	9.19	5	2.90	1.29	100

सारणी क्र. ३ - सारणी क्रमांक ३ से स्पष्ट होता है कि दलितों पर होने वाले अत्याचारों से ०-६ वर्ष से लेकर ६० से भी अधिक आयु के स्त्री-पुरूष पीड़ित हुए हैं जिसमें आयु समूह २४ से ३० की आयु वाले स्त्री एवं पुरूष अधिक संख्या में पीड़ित दिखाई देती है जो २४.१६३ प्रतिशत है। सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि १२ वर्ष से ३० वर्ष तक की आयु के लोग अत्याचार से अधिकतम पीड़ित हुए हैं, जिनका संयुक्त योग ३६४ (६३.५४ प्रतिशत) है।

सारणी - ४

अधिकतम अत्याचार से पीड़ित १० दलित जातियों द्वारा पंजीबद्ध कराए गए मामले[५]

क्रं.	सन्	चमार	झारिया	बसोर	कोरी	दाहिया	चड़ार	खटीक	वाल्मीकि	महार	डुमार
१.	२०००	३४	११	७	२	२	१	१	२	३	२
२.	२००१	२२	४	६	२	१	२	२	-	२	३
३.	२००२	२४	५	५	६	३	६	४	३	३	-
४.	२००३	२७	४	१	४	६	२	-	१	-	-
५.	२००४	३०	५	५	४	४	-	२	१	-	३
६.	२००५	२५	-	५	१	३	-	१	१	-	३
७.	२००६	३३	३	७	५	१	-	२	१	१	-
८.	२००७	२२	६	५	२	२	४	-	४	३	-
६.	२००८	२०	६	५	२	४	३	१	-	१	-
१०.	२००६	१६	८	४५	१	२	३	३	१	२	१
११.	२०१०	३६	६	३	५	१	२	२	१	१	३
	कुल	**२८८**	**६१**	**५३**	**३४**	**२६**	**२३**	**१८**	**१६**	**१६**	**१५**

सारणी क्र. ४- में अत्याचार से अधिकतम पीड़ित होने वाली १० दलित (अनु. जाति) को सम्मिलित किया गया है। सारणी से ज्ञात होता है कि अत्याचार से पीड़ित होने वाली सर्वाधिक पीड़ित जाति 'चमार' है। जिसकी संख्या २८८ है वहीं १० वें क्रम में पीड़ित जाति 'डुमार' है इसके अलावा भी अत्याचार से पीड़ित होने वाली दलित वर्ग की अन्य जातियां हैं जिनमें कम पीड़ित होने का कारण उनके वास्तविक जातिगत पहचान का न होना है।

तथ्यों का विश्लेषणः-

१. कुल पंजीबद्ध मामलों की तुलना में दोषी सिद्ध पाये गये मामलों का प्रतिशत १६.१३ है, जो बहुत ही कम है।
२. अत्याचारों से अधिकतम पीड़ितों का आयु समूह २४ से ३० के मध्य देखा गया।
३. गंभीर अपराध की तुलना में साधारण प्रकृति के अपराधों की संख्या अधिक पाई गई।
४. अत्याचार से सबसे अधिक पीड़ित जाति के व्यक्तियों में 'चमार' जाति के लोग है।

निष्कर्षः अनुसूचित जाति के विरूद्ध होने वाले अत्याचारों की संख्या पंजीबद्ध मामलों से कही अधिक है, पुलिस प्रशासन द्वारा सही कार्यवाही न करना, न्यायालय द्वारा उचित न्याय प्राप्त न होना गैर दलित जातियों के साधन एवं शक्ति सम्पन्न होने के कारण निम्नस्थिति के दलितों द्वारा उत्पीड़न के उपरांत बहुत ही नगण्य मात्रा में रिर्पोट दर्ज कराई जाती है। तथा थाने में उनके मामलों में अधिकांशतः पक्षपात का व्यवहार होता है। अतः निष्कर्षतः वर्तमान समय में दलितों पर होने वाले अत्याचारों की संख्या में गिरावट नहीं आई है। अपितु यह दलित महिलाओं के प्रति होने वाले अत्याचार, अपहरण, शीलभंग, बलात्कार जैसे अपराधों की ओर तीव्रता से बढ़ती जा रही है।

सन्दर्भ

१. रावत हरिकृष्ण, 'उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोष' रावत पब्लिकेशन, जयपुर, २००८, पृ. १०२
२. सिंह रामगोपाल, 'भारतीय दलित समस्याएँ एवं समाधान', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, १६६८, पृ. ११६, १२६, १३४
३. जैन, सनत कुमार, 'हरिजनों पर अत्याचार' अप्रकाशित एम.फिल. शोध प्रबन्ध, डॉ. हरि सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय सागर, म.प्र., १६८२
४. सिंह बलवीर, 'हरिजनों का आपराधिक उत्पीड़न' अप्रकाशित एम.फिल. शोध प्रबन्ध, डॉ. हरि सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय सागर, म.प्र., १६८७
५. जबलपुर अनुसूचित जाति कल्याण प्रकोष्ठ में पंजीकृत रिपोर्ट के अनुसार

भारत की सुरक्षा चिंताएँ और चीनी घुसपैठ : एक समसामयिक विश्लेषण

❑ डॉ. वीरेन्द्र चावरे
❍ अनिल चन्देल

वर्ष २०१३ में चीनी घुसपैठ की शुरूआत अप्रैल से शुरू हुई जब चीनी सैनिक लद्दाख के दौलत बेग ओल्डी क्षेत्र में तंबू गाड़कर बैठ गए। इस घटना के बाद अभी तक चीन द्वारा कई बार भारतीय सीमा पर अतिक्रमण हो चुका है।[१]

भारत और चीन के बदलते हालातों में यह बात तो स्पष्ट हो चुकी है कि चीन भारत को अपना आर्थिक प्रतिद्वन्दी मानता है जिसके चलते वह भारतीय आर्थिक नीतियों पर किसी न किसी प्रकार से दबाव बनाये रखने का प्रयास करता रहता है तथा भारत की सुरक्षा चिंताओं को बढ़ाता है। वर्तमान में चीनी घुसपैठ का उद्देश्य भारत की वैश्विक साख को गिराना तथा एशिया का अमेरिका बनना है। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत भारत की सुरक्षा चिन्ताओं और चीनी घुसपैठ का समसामयिक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

चीनी दबाव और भारत के विरूद्ध आक्रामक योजनाऐं १९६२ से पहले जैसी ही हैं। जैसे-जैसे चीनी हमले की ६० वीं वर्षगाठ पास आ रही है वैसे-वैसे इतिहास दोहराने का खतरा बढ़ता ही जा रहा है। चीन से लगी सीमा व पाकिस्तानी कब्जे वाले कश्मीर (पीओके) में चीनी गतिविधियां लगातार बढ़ती ही जा रही हैं। भारत की सुरक्षा व्यवस्थाओं पर नगर डाली जाए तो अरूणाचल प्रदेश की स्थिति पहले की अपेक्षा मजबूत है लेकिन कश्मीर से लगी चीनी सीमा पर वह स्थिति देखने को नहीं मिल रही है, लेकिन पाकिस्तान की चीन के साथ बढ़ती मित्रता जिसमें पीओके में सेनाओं की मौजूदगी का नया मामला शामिल है जो जम्मू और कश्मीर में भारत की मुश्किलों को और बढ़ा रहा है।[२] इसी के साथ ही इन सभी घुसपैठों के बावजूद चीन का तर्क हमेशा यही रहता है कि वह अपनी ही सीमा में है।[३]

चीन ने भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ का एक अलग ही तरीका निकाला है कि वह भारत के साथ अपनी ''वास्तविक नियंत्रण रेखा'' को ही मानने से इंकार कर रहा है उसने हाल ही के वर्षो में दावा किया है कि पूरा अरूणाचल प्रदेश ''दक्षिण तिब्बत'' का हिस्सा है।[४] चीन रक्षा विभाग के अनुसार जम्मू-कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में कोई वास्तविक नियंत्रण रेखा है हीं नहीं साथ ही चीन का कहना है कि भारत जिस क्षेत्र पर अपना दावा करता है वह वास्तविक रूप में पाकिस्तान द्वारा अधिकृत क्षेत्र है।[५]

सन् २००५ में गाइडिंग प्रिंसिपल के अनुसार प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और वेन जियाबाओं एक निष्कर्ष पर पहुँचे और उनके बीच सहमति बनी कि भारत-चीन सीमा आसानी से पहचानी जाने वाली प्राकृतिक भौगोलिक सरहदें है और कहा है तथा अच्छी तरह परिभाषित है साथ ही यह भी कहा कि सीमावर्ती क्षेत्रों में बसी आबादी के संपूर्ण हितों की रक्षा की जाए।[६] लद्दाख में भारत-चीन में २० दिन तक बनी रही टकराव की स्थिति खत्म होने की घोषणा के बाद भी १७ मई २०१३ को चीनी प्रधानमंत्री ली कछ यांग की भारत यात्रा के समय चीन ने फिंगर-८ नामक स्थान पर फिर घुसपैठ की।[७] भारत के लद्दाख और चीनी सीमा १८६६ में तय की गई थी जो काराकोरम पर्वत श्रृंखला के साथ लगी हुई सिंधु नदी के जलग्रहण क्षेत्र तक जाती है। सन् १८६६ में तय की गई बातों और २००५ में गाइडिंग प्रिंसिपल के अनुसार देपसांग घाटी स्पष्टतः भारतीय क्षेत्र में है तथा भारत का इस क्षेत्र पर दावा १६४२ में लद्दाख और तिब्बत के बीच सहमति के अनुरूप ही है जिस पर समझौता जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन महाराजा और तिब्बत के दलाईलामा द्वारा किया गया था साथ ही इस समझौतें को चीनी सम्राट ने भी अपना समर्थन किया था।[८]

भारत के काराकोरम दर्रे से ३५ किलोमीटर दक्षिण का चह भाग जहां देपसांग ला का पठारी मैदान है भारत के लिये अत्यंत ही महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसे खो देने के बाद भारत के हाथों से लगभग ७५० किलोमीटर के क्षेत्र पर पकड़ खत्म हो जायेगी परिणाम स्वरूप ऐसे स्थान पर चीनी घुसपैठ भारत के दृष्टिकोण से भारतीय सुरक्षा को खतरा होगा। लगातार बढ़ती चीनी घुसपैठों से सीमा पर तनाव काफी बढ़ रहा है तथा चीन क्षेत्र से हटने के लिये राजी बड़ी मुश्किल से हुआ है पर इसकी कोई गारंटी नहीं की वह फिर घुसपैठ

❑ प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
❍ शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

न करें।[६]

हाल ही में हुए भारत और चीन के रक्षा व शांति समझौतों पर भारत सरकार के दावों की आईबी का एक गोपनीय दस्तावेज धज्जियां उड़ाता है जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि भारत की उत्तरी सीमा पर सब कुछ ठीक नहीं है और भविष्य में भारत को चीनी घुसपैठ से और अधिक सावधान रहने की आवश्यकता होगी।[१०] निरंतर हम देखें तो चीनी घुसपैठ सर्वाधिक लद्दाख क्षेत्र में ही हुई है क्योंकि चीनी दृष्टिकोण से यही वह क्षेत्र है जहां भारतीय सुरक्षा बल संसाधनों और बुनियादी ढांचे के नजरिए से कमजोर है।[११] जबकि अरूणाचल प्रदेश सुरक्षा की स्थिति तुलनात्मक रूप से ज्यादा सुदृढ़ है।[१२] चीन यह जानता है कि भारत के लद्दाख क्षेत्र तक मुख्य भू-भाग से एक भी सड़क सीधे इस सेक्टर तक नहीं पहुँचती है और हाल ही के वर्षो में निर्मित दौलत बेग ओल्डी हवाई पट्टी इस क्षेत्र की एकमात्र जीवनरेखा है। इस क्षेत्र में चीनी गतिविधियों को देखते हुए भारत की तुलना में चीन के अधिक संसाधन व सैन्यबल हैं। चीनी मंशा है कि दौलत बेग ओल्डी को अपनी सीमा में शामिल करें ताकि पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में उसके द्वारा निर्मित किये जा रहे काराकोरम हाईवे कॉरिडोर से उसे जोड़ सके।[१३]

चीनी घुसपैठ के संबंध में आईबी के ''द बॉर्डर रिव्यू'' नवंबर २०११ के अनुसार जो देश का आंतरिक विवरण प्रस्तुत करता है में कहा गया है कि वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) के उल्लंघन की पश्चिमी सेक्टर में १२० घटनाएं २०११ में हुई हैं जबकि २०१० के दौरान ३२५ घटनाऐं देखने को मिली जिनमें पश्चिमी सेक्टर में २२४, मध्य सेक्टर में १११ और ६० अरूणाचल प्रदेश में।[१४] वर्तमान घटनाक्रमों और आईबी की इस रिपोर्ट को देखे तो यह बात स्पष्ट है कि चीनी घुसपैठ का केन्द्र पश्चिमी सेक्टर ही रहा है। अभी हाल ही में २१ जून २००६ को भारत के लेह से ३०० किमी. अंदर चुमार सेक्टर में दो चीनी हेलिकॉप्टरों ने भारतीय सीमा का उल्लंघन किया तथा चुमार में भारतीय सेना के टेंटों को नष्ट कर वापस चले गये।[१५]

भारत-चीन सीमा के संबंध में चीन हमेशा से ही दो किस्म की भाषा बोलता रहा है क्योंकि एक ओर तो प्रधानमंत्री वेन जियाबाओं शांति की बातें करते है और दूसरी और पीएलए (चीनी सेना) के जनरल लुओ युआन कहते हैं कि भारत चीनी सीमा पर सैन्य बढ़ोत्तरी कर नई परेशानी खड़ी न करें साथ ही चीनी सैन्य अधिकारी भारत को धमकियाँ देकर द्वेष की हिम्मत और ताकत का जायजा करते रहते हैं सामने वाला देश उसका मुकाबला करने के लिये कितना तैयार है।[१६]

''एअर पावर एट १८००० : द इंडियन एअरफोर्स इन द कारगिल वार'' जो कि कार्नेजी इंडोमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस ने अपनी ७० पन्नों की रिपोर्ट में कहा है कि कारगिल युद्ध के सुखद अंत के बावजूद भारतीय वायुसेना के लड़ाकू पायलटों ने कारगिल युद्ध की अत्यधिक चुनौतियों के बावजूद अपने संचालन को बहुत अधिक सीमित कर दिया है उन्हें इसका संचालन अधिक से अधिक करना चाहिये। इस रिपोर्ट में यह भी चेतावनी दी गई है कि भारत का चीन और पाकिस्तान से लगी सीमा पर परंपरागत युद्ध हो सकता है जिसके परिणाम बहुत ही भीषण होंगे साथ ही कहा है कि भारतीय रक्षा प्रतिष्ठानों को युद्ध की संभावनाओं व परिस्थितियों का आकलन कर रक्षा नीतियां बनानी चाहिये।[१७]

विश्लेषण : भारत और चीन के बदलते इन हालातों में यह बात तो स्पष्ट हो चुकी है कि चीन भारत को अपना आर्थिक प्रतिद्वन्दी मानता है जिसके चलते वह भारतीय आर्थिक नीतियों पर किसी न किसी प्रकार से दबाव बनाये रखने का प्रयास करता रहता है तथा भारत की सुरक्षा चिंताओं को बढ़ाता है। वर्तमान में चीनी घुसपैठ का उद्देश्य भारत की वैश्विक साख को गिराना तथा एशिया का अमेरिका बनना है। चीनी घुसपैठ पर राजनीतिक विश्लेषक ब्रह्म चेलानी का मत है कि ''घुसपैठ की घटनाओं में बढ़ोत्तरी कर चीन भारतीय सेना को हिमालय के आसपास ही रोकना चाहता है तथा चीन, भारत के साथ सीमा पर बातचीत को सैन्य दबाव बढ़ाने और उसकी राजनैतिक घेराबंदी में एक ढाल के रूप में इस्तेमाल करता है''[१८] हाल ही में साउथ ब्लॉक के दस्तावेजों में चीनी घुसपैठों की अनदेखी कर जा रही है। राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार चीनी सेना द्वारा अरूणाचल प्रदेश के युवाओं को हथियारों का प्रशिक्षण और मुफ्त राशन दिया जा रहा है साथ ही उन्हें चीनी सेना में सम्मिलित होने का प्रलोभन भी दिया जा रहा है।

चीनी घुसपैठ के संबंध में राजनीतिक विशेषज्ञ सी. उदय भास्कर का मत है कि ''यह घुसपैठ सामरिक तौर पर उकसाने वाली होती है, लेकिन राजनीतिक तौर पर इनकी टाइमिंग ऐसी है, जिसमें भारत को उलझाए रखा जा सकता

है''[१६] इन घुसपैठों से हमें यही संकेत मिल रहे हैं कि चीन भारत के अधिक से अधिक क्षेत्र में घुसपैठ करे और समझौता होने बाद वहीं उस क्षेत्र पर अपना दावा करे तथा इस क्षेत्र पर वह बार-बार यह कहकर दावा करे कि वह इस क्षेत्र में वर्षो से आ रहा है।

भारत-चीन सीमा पर चीन द्वारा सड़क निर्माण व चीनी घुसपैठ से भारतीय सुरक्षा चिंताऐं बढ़ती ही जा रही हैं। चीन लगातार पाक अधिकृत कश्मीर के रास्ते सामरिक रूप से महत्वपूर्ण सड़क व रेल मार्ग विकसित कर रहा है जिस पर उसकी पकड़ हो तथा उसमें किसी प्रकार की कोई बाधा न आए। चीन ग्वादर को एक तरफ कराची व पंजाब होते हुए पेशावर को सड़क मार्ग से जोड़ रहा है तथा दूसरी तरफ काराकोरम राजमार्ग से वहीं ग्वादर से जियोंग तक रेल मार्ग तैयार कर रहा है। चीन शिनचियांग प्रांत को पाकिस्तान से जोड़ने के लिए पहले ही काराकोरम मार्ग बना चुका है। चीन इन मार्गो से ग्वादर, ओइमरा एवं पासनी नौसैनिक अड्डों पर जरूरी सैनिक साजो-सामान कार्गो व तेल टैंकर मात्र ४८ घंटों में पहुँचाने में सक्षम हो गया है, जिससे भारत पाकिस्तान का संतुलन पहले जैसा नहीं रहा है।

पिछले कुछ वर्षो से भारत लद्दाख में सड़कों व सुरक्षा ढांचों के विकास के पक्ष में नहीं था लेकिन चीन द्वारा सीमा पर किये जा रहे इन सामरिक मार्गो के निर्माण को देखते हुए भारत ने भी पिछले पांच सात वर्षो से सड़क व लड़ाकू विमानों के अड्डे के निर्माण पर बल दिया है। भारतीय सेना की सीमा पर यह सक्रियता चीन को ठीक नहीं लग रही है इसी के चलते हम वर्तमान में लगातार बढ़ती चीनी घुसपैठों को देख सकते हैं। निकट भविष्य में ऐसी परिस्थितियाँ देखने को मिल सकती हैं जिसमें विश्व सामरिक दृष्टि से फिर अमेरिकी व चीनी गुटों में बंट जाये। चीन कभी यह नहीं देखना चाहेगा कि भारत अमेरिकी गुट में जाए तथा आसियान देशों पर भारत का प्रभुत्व बढ़े । इसलिये वह व्यापार के रास्ते भारत से संबंध बनाए हुए है। वतर्मान में भारत-चीन व्यापार १०० अरब डॉलर के लगभग पहुँचने के करीब है तथा चीन भारत से मिलने वाले कच्चे माल पर भी एक हद तक निर्भर है साथ ही ब्रिक्स समूह का सदस्य होने के कारण भी चीन, भारत से संबंध बनाए रखना चाहता है।

वर्तमान में देखें तो चीन एशिया की सबसे बड़ी आर्थिक व सैन्य शक्ति बन चुका है परंतु कहीं न कहीं उसके मन में डर है कि अमेरिका; जापान, वियतनाम, फिलीपिंस, आस्ट्रेलिया और भारत के द्वारा उसे घेरने का प्रयास कर रहा है। इसी के चलते वह एशियाई देशों विशेषतः भारत, जापान, फिलीपिंस व वियतनाम को अलग-अलग घेरता है साथ ही अपने देश की सीमा के साथ लगने वाले लगभग हर देश से उसका सीमा विवाद रहा है चाहे वह रूस ही क्यों न हो। चीन वियतनाम को सबक सिखाने के लिये १९७० में एक बार चढ़ाई भी कर चुका है और हाल ही में हम जापान के साथ सेकांकू द्वीप पर विवाद को भी देख सकते हैं।

वर्तमान घटनाक्रमों को देखते हुए प्रश्न यह उठता है कि क्या हम इतने सक्षम है कि चीन के प्रति कड़ा रूख अपना सकें? चीन दुनिया की एक विशाल आर्थिक, श्रम व सैनिक शक्ति है उसके पास एक से एक विध्वंसक हथियार है इस तरह क्या भारत का चीन से उलझना एक समझदारी वाली बात होगी? इधर भारत ने सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ७३ सड़क परियोजनाएं २०१२ तक पूरी करने का लक्ष्य रखा था। ताकि इससे सभी भारतीय चौकियों पर हर मौसम में रसद पहुँचाने में भारत सक्षम हो जाएगा लेकिन लालफीताशाही और पर्यावरण संबंधी प्रतिबन्धों व लचर नीतियों के कारण ये परियोजनाएं अभी तक पूरी नहीं हो पाई है।

निष्कर्ष - भारत-चीन संबंधों का इतिहास सीमा-विवादों, सशस्त्र संघर्ष और शत्रुतापूर्ण होने के कारण आपसी रिश्तों में विश्वास की कमी रही है। इसलिए आज भी सीमा सुरक्षा संबंधी विवाद है। भारत की चीन के साथ लम्बी सीमा है लेकिन चीन बार-बार घुसपैठ कर भारत को आगाह कर संकेत देता रहता है कि भारत अपनी हद और अपनी सीमा में ही रहे। वह बार-बार भारत के कद को आंकता रहता है और उसे अहसास कराता है। चीन भारत पर और क्षेत्र में अपना दबदबा बनाए रखना चाहता है। इसलिए चीन अपनी विस्तारवादी नीति से एशिया में भारत के बढ़ते प्रभाव को कम करने में रूचि रखता है। चीन-भारत को दक्षिण एशिया में ही सीमित कर देना चाहता है। यहाँ तक कि वह भारत को अपने ही देश की सीमाओं पर उलझाए रखना चाहता है जैसा कि चीन अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, ब्रह्मपुत्र नदी पर बांध बनाना, पाक अधिकृत कश्मीर पर अपनी गतिविधियाँ बढ़ाना और नत्थी वीजा जैसे विवादों को जन्म देता रहता है। चीन भारत के साथ व्यापारिक संबंधों को तो महत्व देता है लेकिन सीमा संबंधी विवाद पर वह पीछे हटना नहीं चाहता। चीन भारत की सुरक्षा को खतरे में

डाल रहा है। चीन भारत के पड़ौसी देशों के साथ सहयोग के सामुद्रिक मार्ग को आसान बना रहा है। जैसा कि ग्वादर पोर्ट, चटगाँव, बंदरगाह, सिटवे, हबनटोटा पोट, मराओ दीप पर चीन की उपस्थिति भारत की सुरक्षा चिंता को बढ़ाती है। अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को देखते हुए कोई देश युद्ध के माध्यम से किसी अन्य देश को पराजित नहीं कर सकता जैसा कि वियतनाम जैसे छोटे से देश पर न तो कभी अमेरिका हावी हो पाया और न ही चीन। लेकिन आज का भारत १९६२ वाला भारत भी नहीं है। इसलिए चीन के लिए भी यह विचारणीय प्रश्न है यदि चीन भारत पर हमला करता है? तो भारत निश्चित तौर पर अमेरिकी खेमे में शामिल हो सकता है क्योंकि चीन ने कभी भी भारतीय हितों का ख्याल नहीं रखा है।

१. भारत को चीन के साथ समस्या के स्थायी समाधान के लिए एक सशक्त कूटनीतिक कदम उठाने, रणनीतिक और राजनीतिक इच्छाशक्ति दिखाने की आवश्यकता है। साथ ही चीन के साथ आर्थिक रिश्तों के अलावा सफल वार्ताएं करनी होगीं।
२. भारतीय सीमा पर चीन बार-बार घुसपैठ कर भारत को एक मनोवैज्ञानिक युद्ध के रूप में टॉर्चर करता है। इसलिए भारत को चाहिए कि वह सीमा पर सैन्य संख्या एवं सैन्य आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को शीघ्र तेज करे ताकि सीमा पर भारत-चीन सैन्य असंतुलन को कम किया जा सके। इससे सीमा पर भारतीय सेना का मनोबल भी बढ़ेगा।
३. चीन की चुनौती को भारत गंभीरता से ले और भविष्य में किसी भी घुसपैठ का कूटनीतिक हल निकालने का प्रयास करे। भारत को चाहिए कि समय रहते चीन से विवादों को शांति से स्थायी रूप से सुलझा ले।
४. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य को संज्ञान में रखते हुए चीनी विदेश नीति की समीक्षा करने की आवश्यकता है।
५. चीन पाकिस्तान की दोस्ती का फायदा उठाकर भारत पर दबाव बनाए रखना चाहता है ताकि वह भारत पर बढ़त बनाए रख सके। लेकिन चीन-पाकिस्तान संबंधों की भी सीमाएँ हैं। भारत इन पर गंभीरता से विचार करे। साथ ही साथ भारत-चीन संबंधों में विश्वास बढ़ाने के उपाय करे।
६. चीन की चुनौती का सामना करने के लिए कूटनीतिक रूप से अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया, ताईवान, फिलीपींस, सिंगापुर, इण्डोनेशिया जैसे देशों के साथ करीबी संबंध बनाने होंगे ताकि इनके साथ मिलकर चीन की साम्राज्यवादी नीतियों पर अंकुश लगाया जा सके।

सन्दर्भ

१. तलवार वी.के., 'नईदुनिया', ०२ अगस्त २०१३, इंदौर, पृ. ०८
२. चेलानी ब्रह्म, 'इंडिया टुडे', नई दिल्ली, २६ नवम्बर २०११, पृ. २६
३. तलवार वी.के., पूर्वोक्त, पृ. ८
४. पार्थसारथी जी., 'नई दुनिया', ११ नवम्बर २०१३, इन्दौर, पृ. ८
५. वर्मा अरूणेंद्रनाथ, 'जनसत्ता', २८ मई २०१३, नईदिल्ली, पृ. ०६
६. पार्थसारथी जी., पूर्वोक्त, पृ. ०८
७. जनसत्ता, २७ मई २०१३, पृ. ०७
८. पार्थसारथी जी., पूर्वोक्त, पृ. ०८
९. वर्मा अरूणेंद्रनाथ, पूर्वोक्त, पृ. ०६
१०. शुक्ल सौरभ, 'इंडिया टुडे', नईदिल्ली, १ फरवरी २०१२, पृ. ३६
११. मेहता अशोक कुमार, 'नई दुनिया', २७ जुलाई २०१३, इंदौर, पृ. १०
१२. चेलानी ब्रह्म, पूर्वोक्त, पृ. २६
१३. मेहता अशोक कुमार, पूर्वोक्त, पृ. १०
१४. शुक्ल सौरभ , पूर्वोक्त, पृ. ३६
१५. नई दुनिया, २४ अप्रेल २०१३, पृ. १२
१६. रजा मारूफ, पत्रिका, ०६ जुलाई २०१३, पृ. १२
१७. जनसत्ता, २२ सितंबर २०१२, पृ. ०२
१८. इंडिया टुडे, १ फरवरी २०१२, पृ. ३६
१९. वही

ग्रामीण धार्मिक जीवन और परिवर्तन की नवीन दिशाएं (राजस्थान राज्य के करौली जिले के विशेष संदर्भ में)

❑ चरण सिंह मीना

आधुनिक काल में परिवर्तन की नवीन शक्तियों, विशेषकर शिक्षा, धर्म निरपेक्षीकरण, नगरीकरण, औद्योगीकरण, यातायात और संचार के साधनों, ने ग्रामीण समुदाय को जिन अनेक रूपों में प्रभावित किया है उनमें से एक ग्रामीण धार्मिक संरचना भी है। यातायात और संचार के नवीन साधनों के विस्तार और शिक्षा के कारण एक ओर ग्रामीण समुदाय वृहद हिन्दू धार्मिक संस्कृति के अत्यधिक निकट आ गया है तो दूसरी ओर धर्मनिरपेक्षता और लौकिकीकरण के नवीन मूल्यों का भी ग्रामीण समुदाय में प्रवेश हो रहा है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत यह देखने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण धार्मिक विश्वासों एवं कर्मकाण्डों में नवीन शक्तियां किन नवीन मूल्यों का विकास कर रही हैं।

परम्परागत भारतीय समाज धर्म प्रधान समाज रहा है जहां धर्म की प्रत्येक क्षेत्र में महत्ता प्राप्त रही है। धर्म व्यक्ति, परिवार और समाज के जीवन को अगणित रूपों में प्रभावित करता रहा है। भारतीय समाज में भौतिक सुख प्राप्ति को जीवन का परम लक्ष्य न मानकर धर्म संचय को प्रधानता दी गयी है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था मूलतः धर्म पर आधारित है। धर्म के आधार पर जीवन के समस्त कार्यों की व्यवस्था करने का प्रयास किया गया है। भारतीय समाज में व्यक्ति ज्ञान, भक्ति, कर्म के द्वारा परमेश्वर के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करता रहा है। वह सत्चित और आनन्द की प्राप्ति का प्रयास तथा जीवन के परम सत्य को जानने की कोशिश करता रहा है। राधाकृष्णन् ने लिखा ''धर्म की धारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन सब अनुष्ठानों और गतिविधियों को ले आता है, जो मानवीय जीवन को गढ़ती और बनाये रखती हैं। हमारे पृथक-पृथक हित होते हैं, विभिन्न इच्छाएं होती हैं और विरोधी आवश्यकताएं होती हैं, जो बढ़ती हैं और बढ़ने की दशा में ही परिवर्तित भी हो जाती हैं। उन सबको घेर-घार कर एक समूचे रूप में प्रस्तुत कर देना धर्म का प्रयोजन है। धर्म का सिद्धान्त हमें आध्यात्मिक वास्तविकताओं को मान्यता देने के प्रति सजग करता है, संसार से विरक्त होने के द्वारा नहीं, अपितु इसके जीवन में इसके व्यवसाय (अर्थ) और इसके आनन्दों (काम) में आध्यात्मिक विश्वास की नियंत्रक शक्ति का प्रवेश कराने के द्वारा। जीवन एक है और इसमें पारलौकिक (पवित्र) और ऐहिक (सांसारिक) का कोई भेद नहीं है। भक्ति और मुक्ति एक दूसरे के विरोधी नहीं है। धर्म, अर्थ और काम साथ ही रहते हैं। दैनिक जीवन के सामान्य व्यवसाय सच्चे अर्थों में भगवान की सेवा है। सामान्यतःकृत कार्य भी उतने ही प्रभावी हैं जितना कि मुनियों की साधना है।[1] स्पष्ट है कि धर्म हिन्दुओं के जीवन को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक रूपों में प्रभावित करता रहा है। इस सम्बन्ध में राधाकमल मुखर्जी ने लिखा है कि ''भारतीय जीवन रचना का निर्माण आत्मा, प्रकृति और परमात्मा और उनके पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना करने वाले सूक्ष्म आध्यात्मिक दर्शन के आधार पर हुआ है।''[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था धर्म पर आधारित है।

भारतीय समाज में धर्म के अर्थ को 'रिलीजन' शब्द के अनुवाद के रूप में नहीं समझा जा सकता है। धर्म एक अत्यन्त व्यापक प्रत्यय है। धर्म उस मौलिक शक्ति के रूप में माना जाता है, जो भौतिक और अभौतिक व्यवस्था का आधारभूत है, और जो उस व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। गिलिन और गिलिन ने लिखा है, ''एक सामाजिक समूह में व्याप्त उन संवेगात्मक विश्वासों को जो किसी अलौकिक शक्ति से सम्बन्धित हैं और साथ ही ऐसे विश्वासों से सम्बन्धित व्यवहारों, भौतिक वस्तुओं एवं प्रतीकों को धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र में सम्मिलित माना जा सकता है।''[3] 'रिलीजन' शब्द के अन्तर्गत अलौकिक विश्वास एवं अधिप्राकृतिक शक्तियां आती हैं, परन्तु हिन्दु समाज में धर्म का सम्बन्ध मुख्यतः मनुष्य के कर्त्तव्य बोध से है। हिन्दु धर्म एक ज्ञान है जो अलग-अलग परिस्थितियों में व्यक्तियों के विभिन्न कर्त्तव्यों को बतलाता है। उन्हें कर्त्तव्य पथ पर बढ़ते रहने की प्रेरणा प्रदान करता है और उनमें मनवांछित गुणों का विकास करता है। वेद, उपनिषद, गीता, स्मृतियां तथा पुराण हिन्दू धर्म के मूल स्त्रोत हैं। इन धर्म ग्रन्थों के माध्यम से भारतीय सामाजिक व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित किया गया है।

भारतीय समाज में धर्म की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका

❑ व्याख्याता - समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, बयाना, भरतपुर (राज.)

विविध स्वरूप है। एक ओर 'वृहद' परम्पराओं का संकलन है जो वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृति, रामायण, महाभारत, गीता आदि ग्रन्थों, महान दार्शनिकों तथा धर्म प्रचारकों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। दूसरी ओर भारतीय समाज में धर्म का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष 'लघु परम्परा' है। स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर पर अनेक धार्मिक विश्वासों, धार्मिक अनुष्ठानों और देवी-देवताओं, साधु सन्तों की महत्ता इस प्रवृत्ति का परिचायक है। इस दूसरी प्रवृत्ति का प्रमुख उदाहरण ग्रामीण धार्मिक विश्वास और कर्मकाण्ड हैं। भारतीय ग्रामीण समुदाय एक ओर वृहद हिन्दु परम्पराओं को स्वीकार करते हुए वृहद भारतीय समाज का एक अंग है तो दूसरी ओर इसमें अनेक स्थानीय विश्वास और धार्मिक मान्यताओं का अस्तित्व इसे एक पृथक अस्तित्व भी प्रदान करता है। मैकियम मैरिट ने भारतीय ग्रामीण धार्मिक संरचना की इन प्रवृतियों का उल्लेख अपने 'किसान गढ़ी' ग्राम के अध्ययन में 'सार्वभौमीकरण' और 'स्थानीयकरण' की अवधारणाओं के माध्यम से किया है।[४] इसी प्रकार दुबे ने 'समीर पेट' गांव के अध्ययन के द्वारा यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि ग्रामीण धर्म वृहद हिन्दू परम्पराओं और स्थानीय धार्मिक विश्वासों एवं क्रिया-कलापों का मिश्रण है।[५]

आधुनिक काल में परिवर्तन की नवीन शक्तियों विशेषकर शिक्षा, धर्म निरपेक्षीकरण, नगरीकरण, औद्योगीकरण, यातायात और संचार के साधनों ने ग्रामीण समुदाय को जिन अनेक रूपों में प्रभावित किया है उनमें से एक ग्रामीण धार्मिक संरचना भी है। यातायात और संचार के नवीन साधनों के विस्तार और शिक्षा के कारण एक ओर ग्रामीण समुदाय वृहद हिन्दू धार्मिक संस्कृति के अत्यधिक निकट आ गया है तो दूसरी ओर धर्मनिरपेक्षता और लौकिकीकरण के नवीन मूल्यों का भी ग्रामीण समुदाय में प्रवेश हो रहा है। वर्तमान अध्ययन मे यह देखने का प्रयत्न किया गया है कि ग्रामीण समुदाय में धार्मिक विश्वासों और कर्मकाण्डों का परम्परागत स्वरूप क्या है और परिवर्तन की नवीन शक्तियां लौकिकीकरण से सम्बन्धित किन नवीन मूल्यों का विकास कर रही हैं।

भारतीय ग्रामीण समुदाय के धार्मिक जीवन की एक महत्वपूर्ण विशेषता वृहद हिन्दु धार्मिक परम्पराओं और स्थानीय लघु परम्पराओं का सम्मिश्रण है। एक ओर वृहद धार्मिक परम्पराओं के द्वारा ग्रामीण व्यक्ति सम्पूर्ण हिन्दू समाज से निकट रूप से सम्बन्धित है तो दूसरी ओर लघु परम्पराएं ग्रामीण संस्कृति को स्थानीय या क्षेत्रीय स्वरूप प्रदान करती है। अनेक देवी देवता, प्रथाएं, परम्पराएं, हिन्दू धर्म ग्रन्थों और शास्त्रों में स्थान न रहते हुये भी स्थानीय स्तर पर ग्रामीण जीवन और व्यवहार के तरीको को संचालित करती हैं। **अतः** वर्तमान में यह देखने का प्रयत्न किया जा रहा है मेरेड़ा, खेड़ी, करीरी, गाजीपुर एवं मंडेरू ग्राम सभा के निवासी किस मात्रा में हिन्दु वृहद परम्पराओं से प्रभावित हैं और उनकी स्थानीय मान्यताओं, परम्पराओं का स्वरूप क्या है। आयु, शिक्षा और जाति का अन्तर उनके विश्वास और कर्मकाण्डों को किस मात्रा में प्रभावित करता है।

कर्म के सिद्धान्त में विश्वास- हिन्दु जीवन दर्शन का एक मौलिक आधार कर्मफल में विश्वास है। यह मान्यता है कि जीव को अपने अच्छे एवं बुरे कर्म के फल का भोग करना पड़ता है। यह मान्यता वृहद भारतीय संस्कृति का एक आवश्यक अंग हैं। जिसका प्रसारण साधारण जनता तक हुआ है। अशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति भी इस धारणा में आस्था रखता है। ग्रामीण जीवन में कर्म के सिद्धान्त के महत्व की विवेचना करते हुये श्रीनिवास ने लिखा है कि गांव के लोगों के नैतिक दृष्टिकोण और क्रियाकलापों के निर्धारण में महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति के वर्तमान स्थिति, उसके दुर्भाग्य और संकटों की व्याख्या कर्म के सिद्धान्त के आधार पर की जाती है।[६]

वर्तमान अध्ययन के उत्तरदाताओं का इस परम्परागत मान्यता के प्रति ध्यान आकर्षित करते हुये उनसे पूछा गया है कि क्या वे कर्म के सिद्धान्त में आस्था रखते हैं। प्राप्त तथ्यों से यह विदित होता है कि अध्ययन में सम्मिलित ६८.५ प्रतिशत उत्तरदाता इस सिद्धान्त में पूर्ण आस्था रखते हैं। ११.५ प्रतिशत उत्तरदाता इस सिद्धान्त में विश्वास नहीं रखते और २० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में किसी स्पष्ट मत का उल्लेख नहीं किया है। अतः स्पष्ट है कि कर्म के सिद्धान्त में आधे से अधिक उत्तरदाताओं की आस्था होते हुये भी अनेक ऐसे उत्तरदाता हैं जो इस सम्बन्ध में किसी स्पष्ट दृष्टिकोण को प्रकट नहीं करते हैं। संशय की यह स्थिति उनके विश्वास की कमी का प्रतीक है।

पुनर्जन्म में विश्वास- पुनर्जन्म में आस्था हिन्दू जीवन दर्शन का एक महत्वपूर्ण आधार है। यह मान्यता है कि जीव को अपने कर्म के फल के परिणामस्वरूप बार-बार जन्म लेना पड़ता है, मोक्ष प्राप्ति की स्थिति में ही जीव को जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त होती है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त में आंकड़ों का संकलन कर स्पष्ट करता है कि अध्ययन में

सम्मिलित ८८.५ प्रतिशत उत्तरदाता पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास रखते है। ५.५ प्रतिशत उत्तरदाता इस सिद्धान्त को नहीं मानते और ६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में किसी स्पष्ट मत का उल्लेख नहीं किया है। अतः स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मिलित केवल थोड़े से उत्तरदाताओं को छोड़कर अधिकांश उत्तरदाता पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास रखते है।

भाग्य में विश्वास- भाग्यवादिता भारतीय समाज विशेषकर ग्रामीण समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता ने जनसाधारण में यह विश्वास प्रचलित किया है कि व्यक्ति का प्रयत्न और परिश्रम से अधिक महत्वपूर्ण उसका भाग्य है। भाग्य के कारण ही व्यक्ति को सुख-दुःख भोगना पड़ता है। वर्तमान अध्ययन के ६५.५ प्रतिशत उत्तरदाता भाग्य फल में विश्वास रखते हैं। १५.५ प्रतिशत उत्तरदाताओं का भाग्य में विश्वास नहीं है और १९ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में किसी स्पष्ट मत का उल्लेख नहीं किया है। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाताओं का यद्यपि भाग्य में विश्वास है तथापि उत्तरदाताओं का एक महत्वपूर्ण वर्ग ऐसा भी है जो भाग्य के सिद्धान्त को संशय की दृष्टि से देखता है।

आराध्य देवी और देवता- उत्तरदाताओं के धार्मिक विश्वास का अध्ययन करते हुये उनसे पूछा गया है कि वे किस देवता या देवी की मुख्य रूप से आराधना करते हैं? प्राप्त तथ्यों से यह विदित होता है कि ३५.५ प्रतिशत उत्तरदाता शिवभक्त हैं, २८.५ प्रतिशत राम भक्त हैं, १६.५ प्रतिशत हनुमान भक्त हैं, १०.५ प्रतिशत उत्तरदाता दुर्गा की आराधना करते हैं तथा ९ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में कोई उत्तर नहीं दिया है।

आराधना का क्रम- उत्तरदाताओं के धार्मिक विश्वास का अध्ययन करते हुये उनसे पूछा गया है कि वे अपने आराध्य देव की पूजा मुख्य रूप से कब करते है प्राप्त उत्तरों से यह विदित होता है कि २८.५ प्रतिशत उत्तरदाता अपने इष्टदेव की आराधना प्रतिदिन करते हैं, ३२.५ प्रतिशत उत्तरदाता सप्ताह के निश्चित दिनों पर अपने आराध्य देव की पूजा करते हैं जबकि ३९ प्रतिशत उत्तरदाता केवल विशेष पर्वों पर अपने इष्ट देवता या देवी की आराधना करते हैं।

वर्तमान अध्ययन प्रचलित मान्यता के विरूद्ध यह निष्कर्ष भी प्रदान करता है कि युवा और शिक्षित वर्ग के सदस्य पूजा पाठ में अधिक रूचि रखते हैं, जबकि अशिक्षित और वृद्ध आयु समूह के सदस्यों की रूचि इन धार्मिक कार्यों में अपेक्षाकृत कम पायी गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रामीण निवासी नवीन शिक्षा ग्रहण के द्वारा लघु परम्पराओं के स्थान पर वृहद हिन्दु धार्मिक परम्पराओं की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं।

स्थानीय देवी देवता- भारतीय ग्रामीण समुदाय के धार्मिक जीवन की एक महत्वपूर्ण विशेषता वृहद हिन्दु संस्कृति से भिन्न स्थानीय देवी-देवताओं और कर्म काण्डों में आस्था का पाया जाना है। वर्तमान अध्ययन के गांव - मेरेड़ा, खेड़ी, करीरी, गाजीपुर एवं मंडेरू इन विशेषताओं से मुक्त नहीं हैं। इन गांवों में कुछ स्थानीय देवी-देवता ऐसे हैं जो सभी गांवों में पाये जाते हैं अर्थात् सामान्य देवी-देवता तथा कुछ विशिष्ट देवी-देवता है जो सभी गांवों में न होकर अलग-अलग गांवों में अलग-अलग हैं। यहां केवल यह जानना है कि वर्तमान परिवेश में इन स्थानीय देवी देवताओं के प्रति आस्था में कितना परिवर्तन आया है।

हीरामन या देव बाबा- इस बाबा को मवेशियों का रखवाला माना जाता है। मवेशियों के बीमार होने या कोई जहरीला कीड़ा जैसे सांप, बिच्छु इत्यादि के काटने पर सबसे पहले इस देवता के सेवक जिसको स्थानीय लोग 'घुड़ल्या' के नाम से पुकारते हैं, से झाड़-फूंक अथवा 'भभूत' लगवाई जाती है। इसके अलावा बाबा के थान पर जाकर 'बन्द' लगवाया जाता है। 'बन्द' एक प्रकार का बन्धन होता है जब तक यह खुलता नहीं है तब तक व्यक्ति या जानवरों को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता हैं। यह 'बन्द' देवता की जब 'जात' लगती है तब खुलते है। ये जात साल में दो बार लगती है। भादों के माह में और वैशाख के माह में।

इस देवता पर पशुओं के साथ आदमियों को कोई जहरीला कीड़ा काटने अथवा बाय (एक प्रकार का अंग रोग) होने पर यह यही प्रक्रिया करनी पड़ती है। वर्तमान अध्ययन के उत्तरदाताओं का ध्यान हीरामन या देव बाबा की ओर आकर्षित करते हुये पूछा गया है कि मवेशियों या आदमियों के बीमार पड़ने अथवा कोई जहरीला कीड़ा काटने पर क्या इस देवता के सेवक से झाड़-फूँक करवायी जाती है? ज्ञात तथ्यों से विदित होता है कि केवल ३२.५ प्रतिशत उत्तरदाता इस इलाज से सहमत थे जबकि ५५.५ प्रतिशत इससे असहमत थे १२ प्रतिशत का कोई जवाब स्पष्ट नहीं था।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में व्यक्ति या मवेशी के बीमार पड़ने पर अधिकांश ग्रामीण चिकित्सक से इलाज करवाना उचित मानते हैं।

शीतला माता की पूजा- चेचक के प्रकोप से बचने के लिए शीतला माता की पूजा और कथा का आयोजन ग्रामीण समुदाय के धार्मिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। वर्तमान अध्ययन के उत्तरदाताओं से यह पूछा गया है कि क्या गांव के लोग शीतला माता की पूजा चेचक के प्रकोप से बचने के लिए सामान्य रूप से करते है? प्राप्त उत्तरदाताओं से यह विदित होता है कि ७२ प्रतिशत की यह मान्यता है कि गांव के लोग शीतला माता की पूजा सामान्य रूप से करते हैं। ६.५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस कथन से सहमति व्यक्त नहीं की है और १६.५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में किसी स्पष्ट मत का उल्लेख नहीं किया है। अतः अधिकांश उत्तरदाता यह मानते हैं कि गांव के लोगों की आस्था शीतला माता में अत्यधिक पायी जाती है।

साधु-सन्त का महत्व- ग्रामीण परिवार में साधु-सन्त को धार्मिक पुरूष और अलौकिक शक्ति का प्रतीक मानकर अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है तथा इन साधु-सन्तों का आदर सत्कार एक पुण्य कर्म माना जाता है। वर्तमान अध्ययन के उत्तरदाताओं से पूछा गया है कि क्या उनके परिवार में साधु-सन्त को विशेष महत्व दिया जाता है? प्राप्त उत्तरों से यह विदित होता है कि ५५.५ प्रतिशत परिवारों में साधु-सन्त को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है। १८.५ प्रतिशत परिवारों में कोई महत्व नहीं प्रदान किया जाता और २६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में किसी स्पष्ट मत का उल्लेख नहीं किया है।

भूत-प्रेत और अप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास- ग्रामीण और पिछड़े हुए समाजों में भूत-प्रेत और अप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास का अत्यधिक प्रचलन रहा है। यह मान्यता प्रचलित रही है कि जो व्यक्ति अप्राकृतिक कार्यों से जैसे दुर्घटना, बीमारी आदि के कारण मरने वाले व्यक्ति की आत्मा भटकती रहती है और भूत-प्रेत, चुड़ैल आदि का रूप धारण कर लेती है। ये प्रेत-आत्माएं गांव के निकटवर्ती निर्जन स्थानों या पेड़ जैसे पीपल, इमली आदि पर निवास करते है। ग्रामीण समुदाय के सदस्य इन प्रेतात्माओं और अप्राकृतिक शक्तियों से भय खाते हैं और उनकी संतुष्टि के लिए अनेक प्रकार के क्रिया-कलाप करते हैं। आधुनिक काल में शिक्षा, तार्किकता और गतिशीलता के विकास के साथ यह सारे अन्धविश्वास निरन्तर कम होते जा रहे हैं, परन्तु पूर्णतया समाप्त नहीं हुए हैं। ग्रामीण समुदाय में इनका अस्तित्व अभी भी बना हुआ है। वर्तमान अध्ययन के उत्तरदाताओं से यह पूछा गया है कि क्या उनके परिवार में भूत-प्रेत और अप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास किया जाता है? प्राप्त उत्तरों से यह विदित होता है कि २२ प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि उनके परिवार में इन शक्तियों में अत्यधिक विश्वास किया जाता है, २६.६ प्रतिशत उत्तरदाताओं में सामान्य विश्वास और ४८.४ प्रतिशत परिवार में भूत-प्रेत में विश्वास नहीं किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि गांव के लोग लगभग आधे परिवारों में भूत-प्रेत में विश्वास अभी भी प्रचलित हैं। **आयु** के आधार पर तथ्यों का सहसम्बन्ध स्पष्ट करता है कि मध्यम आयु समूह और वृद्ध आयु समूह के उत्तरदाताओं के परिवार में अप्राकृतिक शक्तियों में आस्था इन परिवारों में अभी भी बनी हुई है। शिक्षा के आधार पर तथ्यों का सहसम्बन्ध भर स्पष्ट करता है कि जैसे-जैसे उत्तरदाताओं का शैक्षणिक स्तर ऊँचा होता गया है वैसे-वैसे भूत-प्रेत और अप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास की मात्रा कम होती गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा से प्राप्त तार्किकता अन्धविश्वासों को सीमित करने में निश्चित रूप से सहायक है। जाति के आधार पर तथ्यों का सहसम्बन्ध यह स्पष्ट करता है कि जिन परिवारों का भूत-प्रेत में बिल्कुल विश्वास नहीं है उनकी मात्रा उच्च जाति में ५० प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति में १६.६६ प्रतिशत, अनुसूचित जाति में १६.६६ प्रतिशत तथा पिछड़ी जाति में ० प्रतिशत पायी गयी है। अतः स्पष्ट है कि उच्च जाति, शिक्षा प्राप्त और युवा आयु समूह के उत्तरदाताओं के परिवार में भूत-प्रेत और अलौकिक शक्तियों में विश्वास की मात्रा तुलनात्मक रूप से कम पायी जाती है।

त्यौहारों का महत्व- त्यौहार का धार्मिक, सामाजिक और सामुदायिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन अवसरों पर न केवल धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति होती है बल्कि ये सामाजिक सुदृढ़ता और सामंजस्य को भी प्रतिबिम्बित करते हैं। ग्रामीण जीवन में त्यौहारों का महत्व और भी अधिक है क्योंकि इसका सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार से कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था से अत्यन्त निकट है। वर्तमान अध्ययन के उत्तरदाताओं से पूछा गया है कि उनके परिवार में किन त्यौहारों को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है? प्राप्त उत्तरों से यह विदित होता है कि ६०.८ प्रतिशत परिवार में विजयदशमी विशेष रूप से और दीपावली पर्व ७५.६ प्रतिशत परिवार में विशेष रूप से और २०.८ प्रतिशत परिवार में सामान्य रूप से मनाया जाता है। होली

५५.६ प्रतिशत परिवार विशेष रूप से और ३०.८ प्रतिशत सामान्य रूप से मनायी जाती है। नवरात्रा ३०.५ प्रतिशत परिवार में विशेष रूप से और २५.६ प्रतिशत परिवार में सामान्य रूप से तथा ४४ प्रतिशत परिवार में नहीं मनाया जाता है।

वर्तमान ग्रामीण समाज में लोग अत्यधिक मात्रा में त्यौहारों को मनाते तो अवश्य हैं लेकिन परम्परागत ग्रामीण समाज की भांति नहीं जहां शत-प्रतिशत लोग बड़ी धूम-धाम से त्यौहारों का आयोजन करते हैं।

अतः अध्ययन से यह विदित होता है कि भारतीय ग्रामीण समुदाय प्रस्थितियों, भूमिकाओं, मूल्यों तथा विचारों की एक अंतः सम्बन्धी व्यवस्था हैं। धार्मिक क्रिया-कलापों और जातिगत सम्बन्धों में ग्रामीण समुदाय के विभिन्न अंगों को अन्तः सम्बन्धित किया है। धार्मिक कृत्य ग्रामीण समूह एवं व्यक्तियों को एक-दूसरे से सम्बन्धित करते हैं विषेषकर ग्राम देवता की पूजा तथा पारिवारिक पर्व ने इस अतः क्रियात्मक व्यवस्था को बनाये रखने मे मुख्य रूप से योगदान दिया है।

सन्दर्भ

१. राधाकृष्णन, एस., 'रिलीजन एण्ड सोसायटी', जॉर्ज एलिन एन अनविन लिमिटेड, लंदन, १९४७, पृ. १०५-१०६
२. Mukerjee, Radha Kamal, 'Six Villages of Bengal', Popular Bombay, 1971, p. 232-233
३. गिलिन एण्ड गिलिन, 'कल्चरल सोशियॉलाजी', दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, १९४८, पृ. ४५९
४. मैरिट, मैकिम, 'विलेज इण्डिया', यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, १९५५, पृ. १९७-१९९
५. दुबे, एस.सी., 'इण्डियन विलेज', एलाइड पब्लिशर, बॉम्बे, १९६७, पृ. ८८
६. Srinivas M.N., 'A Remembered Village', Oxford University Press, 1974, pp. 317-318

वैश्वीकरण में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता

❑ डॉ. संजय खरे

"शिक्षा राष्ट्र की मेरूदण्ड होती है। वह भूतकाल की उपलब्धियों व वर्तमान परिस्थितियों का संधि स्थल ही नही, ऐसा आलोक भी है जिससे भविष्य की रूपरेखा तैयार होती है।"[1]

विभिन्न रिपोर्टों व अनुसंधानों का आकलन किया जाता है तो यह तथ्य निकलता है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपात में भारतीय शिक्षा का विस्तार व विकास नहीं हुआ इसलिए जब विश्व स्तरीय संस्थानों को सूचीबद्ध किया जाता है तो उनमें भारतीय तकनीकी संस्थानों को छोड़कर किसी अन्य को स्थान नहीं मिलता जबकि छात्र संख्या की दृष्टि से विश्व में चीन व अमेरिका के बाद भारत का तीसरा स्थान है। यह स्थिति भारतीय उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाती है। प्रस्तुत लेख वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में भारत की उच्च शिक्षा की स्थिति तथा उसकी गुणवत्ता में सुधार हेतु प्रयासों की चर्चा पर केन्द्रित है।

इक्कीसवीं सदी की दुनिया पूरी तरह विज्ञान की दुनिया होगी, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। पिछले तीन दशकों में विज्ञान ने विश्व की परिभाषा को बदल कर रख दिया है। नवीन नवाचारों ने भौगोलिक दूरियों को पाट दिया है, परंतु इंटरनेट के संसार ने दुनिया को ही घर के भीतर कैद कर दिया है। भौगोलिक दूरियों को लांघने की जरूरत ही समाप्त कर दी। विश्व की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि विभिन्नताओं को समाप्त कर एक करने की प्रक्रिया ही वैश्वीकरण है और विज्ञान का अगला कदम ब्रह्माण्डीकरण की ओर अग्रसर है।

वैश्वीकरण का प्रभाव अन्य क्षेत्रों की भाँति भारतीय शिक्षा प्रणाली पर भी पड़ा। मैकाले की शिक्षा पद्धति से आरंभ करके आज भारतीय शिक्षा पद्धति ई-लर्निंग के माध्यम से शेष विश्व समुदाय के साथ अपना रिश्ता जोड़ने में समर्थ हो चुकी है। इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि १९५१ में जहाँ १.७ लाख विद्यार्थी उच्च शिक्षा में नामांकित थे वहीं वर्तमान में यह संख्या ७० गुणा बढ़ गई। १९५१ में १८ प्रतिशत भारतीय साक्षर थे जिनमें पुरूषों की साक्षरता २७ प्रतिशत तथा स्त्री की साक्षरता दर ८ प्रतिशत थी वहीं २०११ में ८२.१९ प्रतिशत पुरूष तथा ६५.४ प्रतिशत महिलाएँ साक्षर हैं। आँकड़ों के अनुसार २०११ में साक्षरता दर ६६ प्रतिशत हो गई। यह प्रतिशत व्यापक सुधार को दर्शाता है परंतु जब विभिन्न रिपोर्टों व अनुसंधानों का आकलन किया जाता है तो यह तथ्य निकलता है कि "बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपात में भारतीय शिक्षा का विस्तार व विकास नहीं हुआ इसलिए जब विश्व स्तरीय संस्थानों को सूचीबद्ध किया जाता है तो उनमें भारतीय तकनीकी संस्थानों को छोड़कर किसी अन्य को स्थान नहीं मिलता जबकि छात्र संख्या की दृष्टि से विश्व में चीन व अमेरिका के बाद भारत का तीसरा स्थान है। यह स्थिति भारतीय उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाती है।"[2]

भले ही भारत सरकार जो दावे करें लेकिन नेशनल इंस्ट्रीस्यूट ऑफ साइंस टेक्नोलॉजी एण्ड डेवलपमेंट इण्डस्ट्रीज की ताजा रिपोर्ट के अनुसार एक अरब से अधिक आबादी वाले देश में पिछले दस सालों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में चार लाख से भी कम शोध प्रकाशित किए गये जो कुल वैश्विक शोध प्रकाशन का मात्र तीन प्रतिशत है। भारत के मुकाबले अमेरिका ने ३६ लाख और चीन ने आठ लाख से अधिक शोध प्रकाशित किए। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वर्ष १९९६ से २०१२ के बीच २० देशों के शोध प्रकाशनों का अध्ययन करने पर भारत को १२वें स्थान पर पाया गया। अमेरिका पहले व चीन पाँचवें स्थान पर है। इस अवधि में भारत ने लगभग २,९७,८४० शोध प्रकाशित किए। अमेरिका ने ३६,९९,३७३ शोध प्रकाशित किए जो दुनिया के कुल प्रकाशन का २५.३९ प्रतिशत है, जबकि चीन ने प्रकाशन की दर विगत वर्षों की तुलना में बढ़ोत्तरी करते हुए ८,१७,६३७ शोध प्रकाशित किए जो कुल का ५.६१ प्रतिशत है।[3]

भारत में उच्च शिक्षा की स्थिति :- "यद्यपि भारत को युवाओं का देश कहा जाता है क्योंकि भारत की जनसंख्या का कुल ५४ प्रतिशत हिस्सा ३५ वर्ष से कम आयु का हैं तथापि १०+२ के बाद उच्च शिक्षा तक केवल २५ प्रतिशत युवाओं की ही पहुँच है इनमें से बड़ी संख्या में प्रतिभावान छात्र विदेश चले जाते हैं और वहीं बस जाते हैं इनमें से मात्र १५ प्रतिशत ही देश वापस लौटते हैं।"[4]

वैश्वीकरण के कारण विदेशों की दूरी जैसे-जैसे कम हुई है वैसे

❑ सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

ही विदेशों में भारतीय इंजीनियरों व डॉक्टरों आदि तकनीकी व व्यवसायिक अध्ययन वाले विषय-विशेषज्ञों की माँग बढ़ गई है। आउट सोर्सिंग ने भी इसे प्रोत्साहन दिया है जिसका नतीजा यह हुआ कि आजादी के बाद तकनीकी व औद्योगिक अध्ययन संस्थान तो बढ़ते गये एवं उनकी गुणवत्ता पर भी ध्यान दिया गया परंतु उसके साथ कला संकाय की उपेक्षा हो गई। औद्योगिक व तकनीकी शिक्षण संस्थानों में पर्याप्त आवश्यक संसाधन हैं। पुस्तकालय, कम्प्यूटर, खेल, सामग्री, कैन्टीन, स्वास्थ्य सेवाएँ, होस्टल आदि की सुविधायें इन संस्थानों में मुहैया होती हैं। किंतु सामान्य कॉलेजों में यह सुविधा उपलब्ध नहीं है। इन आवश्यक संसाधनों का स्तर भी उच्च स्तरीय महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में अलग-अलग है। यह अंतर ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में भी दृष्टिगोचर होता है। विशेष रूप से ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में प्रायोगिक सुविधायें नगण्य हैं जो कि वैश्विक शिक्षा का अनिवार्य अंग होती हैं।

यदि भारतीय उच्च शिक्षा के स्तर का मूल्यांकन, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय की संख्या को ध्यान में रखकर किया जाए तो वर्तमान में भारत में लगभग १४,००० सामान्य कालेज तथा लगभग ३,००० व्यावसायिक संस्थान हैं। जिनमें से कुछ को आवश्यक नियम व शर्तों के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने मान्यता प्रदान की है। जबकि ''नैक (NAAC) ने अधिक स्तरीय मापदण्डों के आधार पर २० प्रतिशत कॉलेज तथा ४० प्रतिशत विश्वविद्यालयों को मान्यता प्रदान की है। नैक के अनुसार मात्र ६ प्रतिशत कॉलेज उच्च स्तरीय हैं ६६ प्रतिशत मध्यम स्तर के तथा २० प्रतिशत निम्न स्तर के हैं।''[५] यह मापदण्ड निम्नलिखित आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर तैयार किया गया।

विदेशों की तुलना में भारतीय शिक्षा :- वैश्विक परिदृश्य में देखें तो विदेशों में विशेष रूप से यूरोपीय देशों में उच्च शिक्षा पर्याप्त महंगी है। अधिकांशतः प्रायोगिक तथा व्यावहारिक शिक्षा है। वहाँ पढ़ाई के साथ अनुभव के अर्जन पर भी बल दिया जाता है जबकि भारत में शिक्षा किताबी ज्यादा है। प्रायोगिक संसाधनों की कमी के कारण शिक्षा डेस्क वर्क तक सीमित रह जाती है। शिक्षण के दौरान अनुभव अर्जन के अवसर नगण्य होते हैं।

भारत में शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च भी विदेशों की तुलना में बहुत कम है। भारत की अपेक्षा ब्रिटेन, रूस, चीन, ब्राजील में शिक्षा पर खर्च कहीं ज्यादा है। वास्तव में जब हम अनेक क्षेत्रों में प्रगति कर रहे हैं, अनेक क्षेत्रों में विश्व में अग्रणी है तब देश से प्रतिभा पलायन, स्तरीय उच्च शिक्षण संस्थानों की कमी तथा लगातार गिरता शिक्षण स्तर सोचने पर मजबूर करता है कि उच्च शिक्षा स्तर की गुणवत्ता वृद्धि हेतु आवश्यक कदम उठाये जाने जरूरी हैं।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में ह्रास के कारण :-

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता वृद्धि हेतु उन कारणों पर दृष्टिपात करना भी आवश्यक है जिनके कारण विकास अवरूद्ध होता है। कारण अनेक हैं -

१. शिक्षण संस्थानों में सरकारी हस्तक्षेप।
२. भ्रष्टाचार तथा भाई - भतीजावाद।
३. देशभर में शिक्षकों की भारी कमी।
४. अतिथि विद्वानों से काम चलाऊ शिक्षण व्यवस्था।
५. शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के बीच बुनियादी अंतराल।
६. स्त्री व पुरूष के बीच लिंग भेद।
७. बेरोजगारी आदि।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के प्रयास :-

उच्च शिक्षा को स्तरीय बनाने की दिशा में सरकारी व गैर सरकारी प्रयास किए जा रहे हैं -

१. १२वीं योजनान्तर्गत उच्च शिक्षा के विकास में लगभग ८० करोड़ रूपये निवेश किया जाना प्रस्तावित है।
२. योजना में २०० नये विश्वविद्यालय एवं भारत के प्रत्येक जिले में नवीन महाविद्यालय खोले जायेंगे।
३. वर्तमान में संचालित कई महाविद्यालयों को विश्वविद्यालय में एवं स्वशासी महाविद्यालयों में परिवर्तित किया जायेगा।
४. उच्च शिक्षा में Vocational Education Scheme लागू की जायेगी।
५. उच्च शिक्षा की G.E.R. जो कि वर्तमान में १७ प्रतिशत है उसे बढ़ाकर २०२० तक ३० प्रतिशत किये जाने का लक्ष्य रखा गया है।
६. वर्तमान में केन्द्रीय विश्वविद्यालय की संख्या बढ़ाकर संपूर्ण भारत वर्ष में ४२ कर दी गई है।
७. शिक्षा मद पर सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत बढ़ाने की आवश्यकता है।
८. शिक्षा को मौलिक अधिकारों की सूची में शामिल कर दिया जाए तो अनेक प्रकार की विषमताओं का निराकरण संभव है।
९. नवीन पाठ्यक्रमों का निर्धारण अन्य देशों के पाठ्यक्रम के

समकक्ष किया जाए। इनके अतिरिक्त सरकारी व गैर सरकारी संगठनों को कुछ व्यावहारिक प्रयास भी करने होंगे जैसे नवचारों से शिक्षण संस्थानों को जोड़ना आवश्यक है साथ ही इन संस्थानों को आवश्यक संसाधन युक्त बनना जरूरी है।

१०. शिक्षा के व्यवसायीकरण तथा शिक्षा माफिया पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है।

११. विद्यार्थियों की वर्कशॉप व सेमीनार में भागीदारी सुनिश्चित होनी चाहिए। इस दिशा में सेमेस्टर प्रणाली एक उत्तम प्रयास है।

१२. नए महाविद्यालय व विश्वविद्यालय बनाने से भी ज्यादा जरूरी है कि रिक्त पदों को योग्य उम्मीदवारों का चयन कर भरा जाए।

१३. शिक्षकों की मूलभूत सुविधायें जैसे - कम्प्यूटर, इंटरनेट, फैक्स, पुस्तकालय आदि कॉलेज में ही प्रदान की जाये।

१४. अध्यापन के परम्परागत ढंग में बदलाव की जरूरत है।[६]

इन विभिन्न प्रयासों से शिक्षा के स्तर को सुधारा जा सकता है। वैश्वीकरण में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए एक ओर शिक्षा के विस्तार की आवश्यकता है तो दूसरी ओर शोध व अनुसंधानों के स्तर को सुधारने की आवश्यकता है। इसमें अंधानुकरण तथा नकल की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने की जरूरत है जिससे शोध मौलिक हो सकें। दूसरी ओर शिक्षकों के मनन व चिंतन के साथ अध्यापन में नवीन प्रयोगों से भी शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारा जा सकता है।

सन्दर्भ

१. श्रीवास्तव, डी.एस., 'भारत में शिक्षा का विकास', साहित्य प्रकाशन, आगरा, २००३ पृ. ८७१-७२

२. अग्निहोत्री, रवीन्द्र, 'भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्या', रिसर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २०११-१२, पृ. १७-१८

३. श्रीवास्तव, ब्रजेश, 'उच्च शिक्षा का गुणात्मक विकास', आदित्य पब्लिकेशन, बीना, (म.प्र.) २०१२, पृ. ४५-५१

४. National Seminar, Quality Assurance & Best Practices in Higher Education A.D. Office Sagar, (M.P.), 2012.

५. वार्षिक प्रतिवेदन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली, २०११-१२, २०१२-१३.

६. टाइम्स ऑफ इण्डिया, २५ अप्रैल, २०१२, नई दिल्ली.

भूमंडलीकरण के दौर में डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन की प्रासंगिकता

❑ डॉ. सुनीता त्रिपाठी

आधुनिक भारत के निर्माता, जनतंत्र के महान संरक्षक एवं नवभारत के संविधान के प्रधान शिल्पी भारत रत्न बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर को इस भारत भूमि पर जन्म लिये ११७ वर्ष से भी अधिक बीत चुके हैं। उनके महापरिनिर्वाण के भी लगभग ६० वर्ष बीतने वाले हैं। जन्म शताब्दी और मृत्यु के इतने दिनों के बाद भूमंडलीकरण के इस युग में उनके द्वारा किये गये संघर्षों तथा चिंतन की क्या आज भी आवश्यकता है? प्रस्तुत लेख के अंतर्गत भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन की प्रासंगिकता को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

आधुनिक भारत के निर्माता, जनतंत्र के महान संरक्षक एवं नवभारत के संविधान के प्रधान शिल्पी भारत रत्न बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर को इस भारत भूमि पर जन्म लिये ११७ वर्ष से भी अधिक बीत चुके हैं। उनके महापरिनिर्वाण के भी लगभग ६० वर्ष बीतने वाले हैं। जन्म शताब्दी और मृत्यु के इतने दिनों के बाद भूमंडलीकरण के इस युग में उनके द्वारा किये गये संघर्षों तथा चिंतन की जरूरत आज भी महसूस की जा रही है तो क्या, आज का समाज उनको एक ऐतिहासिक पुरुष के रूप में या उनकी मूर्ति बनाकर पूजा करने तक ही उनको सीमित रखना चाहता है? अथवा धर्म और जाति से ऊपर जाकर उनके विचारों को स्वीकर करने वाले प्रश्न आज उठाये जा सकते हैं।

२० वीं सदी से प्रारंभ से ही भारत में मशीनीकरण का युग आया। नगरों का विकास प्रांरभ हुआ। अम्बेडकर के मतानुसार यह सामन्ती व्यवस्था की जड़ता, गतिहीनता को भंग करने का कार्य यूरोप की व्यापारिक और मशीनी क्रांति ने किया। गांवों के परम्परागत ढांचे में हलचल मची। दलित और शोषित जातियों को शहरों की ओर आकर्षित होने का अवसर मिला। समाज के परम्परागत कठोर स्वरूप में दरारें पड़ीं। यद्यपि शोषण, प्रताड़ता और अत्याचार में कोई विशेष कमी नहीं आई लेकिन श्रम विभाजन के वैदिक कालीन सनातन ढाँचे में टूटन अवश्य पैदा हुई। श्रम विभाजन की यह प्रक्रिया जातियों के विभेद को विलुप्त करने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर चुकी है। सूक्ष्म श्रम विभाजन का आधार शिक्षा, प्रशिक्षण, तकनीकी कौशल एवं ज्ञान-विज्ञान है। किन्तु, इन विविध क्षेत्रों पर सामन्तों और उच्च वर्णों का अधिकार है, तो निम्न वर्णों को इनके क्षेत्रों में प्रवेश का अवसर ही नही मिल सकता। अतः पहली आवश्यकता अवसरों की समानता स्थापित करने की है। अवसरों के प्रजातंत्र के बिना श्रमविभाजन की प्रकृति का लाभ नही लिया जा सकता।[१]

भारतीय संविधान निर्माता बाबा साहेब अम्बेडकर ने अपने संघर्षो एवं चिंतन के माध्यम से समाज में स्वतंत्रता, समानता और उत्पादन के क्षेत्र में आन्तरिक प्रजातंत्र का विकास किया, जो आज अत्यंत ही प्रासंगिक हो गया है जिसके परिणामस्वरूप लोगों ने अपने सुख-सुविधा के लिए शहरों की ओर प्रस्थान किया। तकनीकी ज्ञान, शिक्षा और कौशल अर्जित करने के मार्ग की बाधाएँ दूर हुईं। पिछड़े, कमजोर, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की आरक्षण- व्यवस्था ने श्रम करने वालें व्यक्ति को नये व्यावसायिक ढाँचे में बदला, अम्बेडकर की यह धारणा थी कि श्रम विभाजन की खुली अर्थव्यवस्था जातिगत जड़ताओं को समाप्त कर गतिशील घटक तैयार करेगी।[२]

जातिवाद की कट्टरता के कारण भूमि और सम्पत्ति पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का सनातन अधिकार रहा है। सेवा क्षेत्र में लगे लोगों को पिछड़ा, अछूत, दलित, बनवासी बनाकर उनकें श्रम का शोषण किया जाता रहा है। बेगारी प्रथा, सामाजिक प्रताड़ना, शिक्षा के अप्रसार और अन्य कुरीतियों ने दलितों के जीवन को कीटपतंगों की तरह बना दिया है। जहाँ राष्ट्र की तीन चौथाई से भी अधिक जनसंख्या हीनता, अभाव और दुखों को भोगने के लिए विवश की जाती है, वहाँ उत्पादन और उपयोग दोनों में वृद्धि कैसे हो सकती है? ऐसे समाज में केवल अत्याचार, चरित्रहीनता और अदक्षता ही बढ़ती है।[३]

आज भारत में बढ़ता आर्थिक संकट इसके ही कारण है। दलित वर्ग, सम्पत्ति और भूमि के अधिकार से पृथक् हो गये। जमीदारों को अपनी विशाल भू-सम्पति के बारे में कोई जानकारी नही रहती है। ये ब्राह्मणों और राज पुरोहितों, पण्डों और पुजारियों के भरोसे भूमि पर उत्पादन करते हैं। दलित वर्ग भूमि पर काम करता है, समाज का ब्राह्मण वर्ग शोषण करता है। अम्बेडकर का मत था कि प्रत्येक व्यक्ति

❑ सहायक प्राध्यापक, राजनीति शास्त्र, शासकीय स्वाशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय सागर (म.प्र)

को समान अवसर होने चाहिए। सभी के विकास से ही देश का विकास सम्भव है। उनका दृढ़ मत था कि जब तक सामाजिक आधार पर समाज में समानता स्थापित नहीं होती तब तक किसी का विकास संभव नहीं है। इसप्रकार बाबा साहेब के विचार आज कम ही सही धीरे-धीरे प्रासंगिक हो रहे है और समाज में समानता स्थापित हो रही है।

भारतीय संविधान में आरक्षण और संरक्षण देने के पीछे उनकी यह नीति थी कि आने वाले कुछ वर्षो में समाज समता के निकट आ जायेगा। बाबा साहेब का पहला मंत्र था शिक्षित बनो, आज का समाज भी इस मंत्र को पूर्णरूपेण स्वीकर करने के लिए तैयार है। आज दलित वर्ग के लोग समाज के अन्य वर्गों की तरह शिक्षा के क्षेत्र में आगें बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं और इस क्षेत्र में वे सफल भी हो रहे है। इसमें और तेजी लाने की जरूरत है, तभी बाबा साहेब की सोच पूर्णरूपेण साकार हो पायेगी। समाज में आज दलित समुदाय के लोग भी अपने अधिकार को समझने लगे हैं। वे संसद तथा विधानसभा में भी जोरदार ढंग से प्रतिनिधित्व कर रहे है।

अम्बेडकर ने समाज के सभी वर्गों को संवैधानिक सुरक्षा दी है। आज शासक वर्ग दलितों के अधिकारों को नकार नही सकते। उनकी आकांक्षाओं को मूर्त रूप देने के लिए वे योजनाएँ बनाते हैं। बावजूद इसके अम्बेडकर के स्वप्न अधूरे ही रहे हैं। जिस मानसिकता के विरोध में वे लड़ रहे थे उसमें आज भी परिवर्तन नही हो पाया है। पिछले कुछ वर्षो से तो सनातनी, प्रतिगामी और परिवर्तन-विरोधी शक्तियाँ अधिक तेजी के साथ संगठित होती जा रही है। पिछले कुछ वर्षो से देश की आर्थिक समस्याएँ इतनी उलझ गयी हैं कि उससे आर्थिक विषमता बढ़ती जा रही हैं। प्रतिवर्ष अठारह लाख बेरोजगार तैयार हो रहे हैं। युवक सभी ओर से उद्ध्वत और बेचैन होता जा रहा है। इस युवक को कहा जा रहा है कि उसकी इस बेरोजगारी और असहाय स्थिति के लिए आरक्षण की नीति कारणीभूत है। परिणामतः जाति-व्यवस्था तथा आर्थिक विषमता के विरोध में लड़ाई लड़ने के बजाय वह दलित-विरोधी बनता जा रहा है। उसकी इस दलित-विरोध की मानसिकता बनाये रखने का काम पत्रकारिता और धर्म के मुखौटे लगाकर राजनीति करने वाले लोग कर रहे हैं।[५] ऐसी स्थिति में अम्बेडकर के सपनों का भारत बनाने में कुछ कठिनाईयाँ आ रही हैं।

जिस संविधान को पूरी निष्ठा और परिश्रम के साथ उन्होंने बनाया था, उसमें बार-बार सुविधानुसार संशोधन किये जा रहे हैं। अर्थात् संशोधनों की आवश्यकता तो थी और है भी परन्तु भय यह है कि अगर प्रगतिविरोधी शक्तियाँ अधिक प्रबल हो गयीं तो वे संविधान की आत्मा को ही बदल देंगे। यह सही है कि हिन्दू कोड बिल के अनेक प्रावधान जो अम्बेडकर के समय स्वीकृत नहीं हो सके वे बाद में स्वीकृत हुए। मजदूरों, श्रमिकों और दलितों को और अधिक संरक्षण बाद के वर्षो में अनेक कानूनों द्वारा दिया गया। जहाँ तक संविधान का प्रश्न है, वह अम्बेडकर के सपनों के और आगे चला गया है। परन्तु दूसरी और दलितों पर होने वाले अत्याचारों की संख्या भी बढ़ रही है। एक विचित्र विसंगति स्पष्ट दिख रही है कि संविधान में हम अधिक प्रगतिशील हैं, कानून बनाते समय हम समता, मैत्री और बन्धुभाव के मूल्यों को महत्व दे रहे हैं। परन्तु प्रत्यक्ष आचरण में, प्रशासन में स्थितियाँ ठीक उल्टी है।[६]

भारतीय राजनीति पर अम्बेडकर का प्रभाव आज भी स्पष्ट है। इस अर्थ में कि शिक्षा के प्रचार-प्रसार और सुविधाओं के कारण दलितों की आशा-आकांक्षाएँ बढ़ रही हैं। उन्हें मूर्त रूप देने हेतु वे दबाव की राजनीति का उपयोग कर रहे हैं। दलितों के इस दबाव की राजनीति के कारण, उनके मतों के आकर्षण के कारण प्रत्येक पार्टी उन्हें अधिकाधिक सुविधाएँ देने की घोषणा कर रही है अथवा उनके आरक्षण और संरक्षण को बनाए रखने का आश्वासन दे रही है।[७] यह सब अम्बेडकर के राजनीतिक संघर्षो का ही परिणाम है।

अम्बेडकर सबको शिक्षित करने की बात करते थे, जो कम ही सही लेकिन उनकी सोच आज धरातल पर आ रही है। आज सरकार के द्वारा सर्वशिक्षा अभियान के माध्यम से सबको शिक्षित करने के लिए कदम उठाए गए हैं। भले ही इस योजना का लाभ शहर के दलितों की अपेक्षा गांव में कम ले पा रहे हैं, लेकिन उनका प्रतिशत धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

अम्बेडकर समाज की बुराइयों को जिन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उजागर करते थे इन पत्र-पत्रिकाओं की प्रासंगिकता आज भी कायम है। महाराष्ट्र में तो 'दलित पत्रकारिता' ने अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया है। गुजरात, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, केरल और तमिलनाडु में पत्रकारिता के क्षेत्र में इस वर्ग की कई प्रतिभायें क्रियाशील हैं। दलितों पर हुए अन्याय और अत्याचार के खिलाफ छेड़ देते हैं, सवर्ण पत्रकारिता ने इन्हें पूरे सम्मान के साथ स्वीकार किया है।[८]

साहित्य के क्षेत्र में मराठी में 'दलित साहित्य' नाम से

पत्रिका छप रही है वह किसी से भी कम नहीं है। साहित्य की परम्परा में पहली बार इस उपेक्षित वर्ग की यातना को शब्द-बद्ध किया गया। श्रेष्ठ साहित्य के किसी भी मानदण्ड पर खरे उतरने की क्षमता इन कृतियों में हैं। १९८४-१९९० के इस कालखंड में साहित्य अकादमी ने मराठी की जिन कृतियों का सम्मान किया उनमें से तीन आत्मचरित्र हैं और वे दलित और आदिवासी विमुक्त समाज से जुड़े हुए हैं। अत्यंत सशक्त और जीवंत कविता इस साहित्य की विशेषता है। कविता, आत्मकथा, नाटक और कहानी इन चारों विधाओं में दलित संवेदनाओं की अभिव्यक्ति हो रही है। पारंपरिक साहित्य की मान्यताओं को तोड़कर उन्होंने लेखन किया है। इस साहित्य ने एक नया सौंदर्यशास्त्र दिया है। नयी समीक्षा पद्धति दी है। स्वतंत्र भाषिक चेतना को उभारा है। इन सभी साहित्यकारों ने अम्बेडकर को ही अपने प्रेरणास्रोत के रूप में देखा है।[६]

शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए दलितों द्वारा स्थापित कई संस्थाएँ महाराष्ट्र में सक्रिय हैं। शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने का जो कार्य स्वयं अम्बेडकर ने शुरू किया था और पूर्व में ज्योतिबा फूले ने उसका आज काफी विस्तार हो चुका है।[१०]

अम्बेडकर जिस समतामूलक समाज की स्थापना के लिए संघर्ष कर रहे थे, उनके संघर्षों के कारण ही आज समाज में जाति-व्यवस्था कमजोर पड़ने लगी है। विज्ञान के विकास के साथ-साथ आज लोगों की सोच में मौलिक बदलाव आया है। व्यक्ति अपनी सोच में अधिकाधिक यथार्थपरक, तार्किक एवं युक्तिसंगत होता जा रहा है। वर्ण, कर्म एवं पुनर्जन्म संबंधी वैचारिकी संदर्भहीन हो गई है। इसके स्थान पर सामाजिक न्याय पर आधारित लोकतांत्रिक वैचारिकी एवं मूल्य समाज में प्रक्षेपित हो रहे हैं। संविधान की रचना के साथ वर्ण एवं जाति संबंधी नियमगत ढाँचा अब अर्थहीन हो गया है। लौकिक आचरण के निर्धारण में शास्त्रों की भूमिका सिमटती जा रही है। शिक्षा एवं व्यवसाय संबंधी जातीय प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया है। अब सबको शिक्षा व रोजगार प्राप्त करने का समान अधिकार दिया गया है। अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है। अन्तर्जातीय व अन्तर्वर्णीय विवाहों को मान्यता प्रदान की गई है। जन्म, वंश, लिंग एवं विश्वास के आधार पर व्यक्ति व व्यक्ति के बीच भेदभाव खत्म कर दिया गया है। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानों के माध्यम से लोकतंत्र अब केवल समान राजनीतिक अधिकार पर आधारित एक राजनैतिक प्रणाली ही नहीं है अपितु स्वतंत्रता एवं समानता पर आधारित एक न्यायपूर्ण सामाजिक व आर्थिक प्रणाली के रूप में भी स्थापित हो रहा है।[११]

अपने पारंपरिक व्यवसायों को छोड़कर दलित युवक नये-नये व्यवसायों में प्रवेश कर रहे हैं। उद्योग-व्यवसाय, वस्तुओं का उत्पादन, मुद्रण तथा अन्य छोटे-बड़े व्यवसायों में वह पूरी जिद के साथ स्पर्धा कर रहा है। कृषि उत्पादन में भी वह फैलता जा रहा है। सरकारी नीतियों के कारण प्रशासन में थोड़ी संख्या में क्यों न हो वह दिखलाई दे रहा है। इस प्रकार बाबा साहेब के सपनों के अनुसार जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वह पूरी ताकत के साथ खड़ा है।[१२]

अम्बेडकर वैज्ञानिक विचारक भी थे उनका विचार आज के संदर्भ में और भी प्रासंगिक हुआ है। आज तकनीकी एवं औद्योगिक विकास के साथ न केवल जीवन की मौलिक परिस्थितियाँ बदली हैं, आर्थिक संबंध और आर्थिक ढाँचा बदला है, अपितु जीवन-मूल्यों एवं प्राथमिकताओं में भी बदलाव आया है। यह बदलाव आगे और भी सघन होगा। इसके पीछे लौटने की संभावना क्षीण हैं। जैसे-जैसे हम उच्च तकनीकी समाज में प्रवेश करेंगे, वैसे-वैसे सामाजिक संबंधों में परिवर्तन तेजी से होंगे मसलन परखनली शिशु की पहचान, गर्भपात, सुप्रजनन एवं कृत्रिम गर्भाधान संबंधी सुविधाओं के साथ परम्परात्मक पति-पत्नि एवं पारिवारिक सम्बन्ध अर्थहीन हो जाएंगे। सह शिक्षा, सह-कर्मिता, नारी-स्वातंष्य एवं अन्तर्जातीय विवाहों की मान्यता के पारिवारिक एवं दाम्पत्य संबंधों पर संप्रति व्यापक प्रभाव पड़ा है। भविष्य में यह प्रभाव अधिक फलीभूत होगा।[१३]

तकनीकी समाज प्रतिस्पर्धात्मक एवं खुला समाज होगा जिसमें जन्म, लिंग एवं धर्म पर आधारित प्रतिबंध टूट जायेंगे। तकनीकी विकास के साथ समाज में परम्परागत सम्बन्धों का ताना-बाना छिन्न-भिन्न हो जायेगा जिससे जाति व्यवस्था कमजोर होगी और लोकतांत्रिक समाज का मार्ग प्रशस्त होगा।

अम्बेडकर जिस लोकतंत्र की बात करते थे, भारत जैसे परम्परागत समाज में लोकतंत्र की स्थापना करना सरल नहीं था। इसलिये शुरूआती दौर में लोकतंत्र को आघात पहुँचना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी, किन्तु विगत वर्षों से भारत में लोकतंत्र ने कठिन चुनौतियों का जिस प्रकार सफलतापूर्वक सामना किया है उससे लगता है भविष्य में

लोकतंत्र और मजबूत होने वाला है। जनता के द्वारा सरकार के रूप में भारत में लोकतंत्र ने पहला दौर पूरा कर लिया है। अब संघर्ष जनता के लिये सरकार और जनता की सरकार के लिये हो रहा है। सत्ता में जितनी उच्च वर्गों की भागीदारी घटेगी और मध्यम व कमजोर वर्गों की भागीदारी बढ़ेगी उतनी ही वह जनता की सरकार होगी और जैसे-जैसे सामाजिक-आर्थिक लाभ आम जनता तक पहुँचेगा वैसे-वैसे सरकार जनता के लिये भी होगी।[१४] लेकिन भूमंडलीकरण के इस दौर में पूंजी का प्रभाव का बढ़ना एक खतरनाक संकेत है।

देश की राजनीति पर बाबासाहेब का प्रभाव अमिट है। भारतीय राजनीति दलित शक्ति को नकारकर न सत्ता तक आ सकती है और न कोई कार्यक्रम कार्यान्वित कर सकती है। इन्हें नकारने का अर्थ है अपनी या अपनी पार्टी की राजनीतिक हत्या। इस कारण प्रतिगामी शक्तियाँ भी इन्हें, मन मारकर क्यों न हो, स्वीकारती हैं। प्रौढ़ मताधिकार और संसद और विधानसभा के स्थानों में आरक्षण - ये दो ऐसी व्यवस्थाएँ हैं जिनके कारण राजनीति में इस वर्ग को नकारकर कोई आगे बढ़ ही नहीं सकता। 'जाति निर्मूलन असंभव प्रक्रिया नहीं है?' ऐसा बाबा साहब का विचार था। लाहौर के जात-पात तोड़ो अधिवेशन के अध्यक्ष पद से दिए जानेवाले अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में उन्होंने कहा था कि अंतरजातीय विवाह ही जाति-व्यवस्था को कमजोर बना सकते हैं। ऐसे विवाह अगले सौ-दौ सौ वर्षों में अगर तेजी से होने लगे तो जातियाँ टूट सकती हैं। इसके लिए उन्होंने कई प्रमाण दिए हैं। पिछले ६० वर्षों से ऐसे विवाहों की संख्या बढ़ती जा रही है। प्रदेश की सरकारें इन्हें बढ़ावा दे रही हैं। महाराष्ट्र में तो ऐसे दाम्पत्यों का सार्वजनिक सत्कार किया जाता है। ऐसे विवाहों के लिए कई संस्थाएँ, संगठन प्रयत्न कर रही हैं। समाज भी अब इन दम्पत्तियों को पूर्ण संरक्षण दे रहा है, अर्थात् यहाँ भी अन्तर स्पष्ट है। दक्षिण में ऐसे विवाह अधिक होते हैं उत्तर में इक्के-दुक्के विवाह हो रहे हैं। आर्य समाज का तो एक कार्यक्रम ही अंतरजातीय विवाह का है। आज से ६० वर्ष पूर्व जो समाज अंतरजातीय विवाह करने वालों का जीना मुश्किल कर देता था, जिन्हें बहिष्कृत कर देता था, वही समाज अब उन्हें सम्मान के साथ स्वीकार कर रहा है, इससे अम्बेडकर के स्वप्नों की पूर्ति ही कहेंगे। दक्षिण के देहातों में भी इस सम्बन्ध में मानसिकता बदल रही है।[१५] यह एक शुभ लक्षण है, कि आज इस भूमंडलीकरण के युग में भी उनके विचार जोरदार ढंग से प्रासंगिक हो रहे हैं।

दलितों, शोषितों को अपने अधिकार के प्रति अहसास की चिंगारी अम्बेडकर ने पैदा की है। यह चिंगारी आज धीर-धीरे आग का रूप ले रही है। आज से ५०-६० वर्ष पूर्व दलितों पर कितने भी अत्याचार होते थे, वे समाचार छपते नहीं थे। वे अत्याचार और अन्याय को अत्याचार नहीं समझते थे, क्योंकि वे दलितों को पशु-पक्षी से बदतर समझते थे। दलित अपनी क्षमता को ही खो बैठे थे। अम्बेडकर ने अपने संघर्षों से दलितों, शोषितों को क्षमतावान बनाया, अब उन्हें अपनी क्षमता का अहसास हो चुका है। आज दुनिया की कोई ताकत नहीं है कि उनकी क्षमता को कम कर सके। आज इक्कीसवीं सदी न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिये और आर्थिक निर्णायक हो रही है। भारत में न्यायपूर्ण समाज की कल्पना जातिविहीन समाज की स्थापना के बिना साकार नहीं होगी। यही बाबा साहेब अम्बेडकर का अन्तिम लक्ष्य था। अतः इक्कीसवीं सदी जिसमें आज हम अपना जीवन-यापन कर रहे हैं वह निश्चित रूप से अम्बेडकर की सदी है।

संदर्भ

१. सिंह, रघुवीर, 'इक्कीसवीं सदी में अम्बेडकरवाद', स्वराज्य प्रकाशन, दिल्ली, २००१, पृ. १५६
२. वही, पृ. १५६,
३. वही, पृ. १५६-१६०,
४. वही. पृ. १६०,
५. रणसुभे, सूर्यनारायण, 'डॉ. बाबासाहेब', स्वराज्य प्रकाशन, देहली, २००६, पृ. १२४
६. वही, पृ. १२५,
७. वही, पृ. १२५,
८. वही, पृ. १२८,
९. वही, पृ. १२६,
१०. वही, पृ. १२६,
११. सिंह, राम गोपाल, 'भारतीय समाज एवं संस्कृति', विश्वविद्यालय प्रकाशन सागर, १९९४, पृ. १४८,
१२. गावा, ओम प्रकाश, 'डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर', नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, २०००, पृ. १२६,
१३. सिंह, राम गोपाल, 'सामाजिक न्याय लोकतंत्र और जाति व्यवस्था', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९९६, पृ. १६३,
१४. वही, पृ. १६३,
१५. गावा, ओमप्रकाश, पूर्वोक्त, पृ. १३०,

भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश : एक आकलन

❑ डॉ. बिन्दु श्रीवास्तव

मानव सभ्यता के विकास का प्रत्येक पृष्ठ क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के बहुरंगी प्रभावों और परिणामों से भरा है। आर्थिक क्रियाकलापों की विश्व प्रसिद्ध व्यापकता अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसी वैश्विक व्यवस्थाओं के रूप में भी प्रगट हुई। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष हो या विश्व बैंक या १९९५ में बना विश्व व्यापार संगठन सभी के उद्देश्य एक जैसे ही रहे हैं।[१] विश्व की अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं का आर्थिक विकास / आज के परिदृश्य में सभी राष्ट्र विकास के लिए प्रयत्नरत ही नहीं संघर्षरत भी है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा प्रसार हो या संकुचन, अवमूल्यन हो या अधिमूल्यन इसका प्रत्येक रूप प्रभावोत्पादक होता है। मुद्रा की प्रत्येक भंगिमा किसी भी राष्ट्र की समूची अर्थव्यवस्था को हिलाकर रख देती है इसलिए प्रत्येक राष्ट्र इसकी प्राप्ति के लिए हरसंभव विभिन्न तरीकों, नीतियों को अपनाकर विकास के सोपान तय करता है। भारत भी इस आईने से बाहर नहीं है इस कारण भारत ने भी अपने विकास के लिए १९९१ में नई आर्थिक नीति के दौरान उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण को अपनाकर विश्व में हुई प्रगति एवं तकनीकी ज्ञान का लाभ उठाकर देश में आर्थिक विकास की गति को तेज करने का वीणा उठाया।[२] इसी तारतम्य में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्राश्रय मिला है।

मुद्रा की प्रत्येक भंगिमा किसी भी राष्ट्र की समूची अर्थव्यवस्था को हिलाकर रख देती है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र इसकी प्राप्ति के लिए हरसंभव विभिन्न तरीकों, नीतियों को अपनाकर विकास के सोपान तय करता है। भारत भी इस आईने से बाहर नहीं है इस कारण भारत ने भी अपने विकास के लिए १९९१ में नई आर्थिक नीति के दौरान उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण को अपनाकर विश्व में हुई प्रगति एवं तकनीकी ज्ञान का लाभ उठाकर देश में आर्थिक विकास की गति को तेज करने का वीणा उठाया। इसी तारतम्य में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रश्रय मिला। प्रस्तुत लेख भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के आकलन का एक प्रयास रहा है।

विदेशी पूंजी ३ प्रकार की होती है (१) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (२) एक सरकार से दूसरी सरकार को ऋण (३) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ऋण। प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग एक देश की निजी विदेशी संस्थाओं द्वारा दूसरे देश की निजी या सार्वजनिक संस्थाओं में किया जाता है यह दो प्रकार का होता है - (१) प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (२) पोर्टफोलियो विनियोग भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश[३] आर.बी.आई. के आंकड़ों के अनुसार २०११-१२ में ३४ प्रतिशत की उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और निवेश ४६.८ अरब डालर रहा है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार २०११-१२ में देश में कुल एफ.डी.आई. में लगभग एक तिहाई का स्त्रोत मॉरिशस रहा है। मॉरिशस की करारोपण की उदारनीति के कारण ही भारत में निवेश के इच्छुक अधिकांश विदेशी निवेशक अपना निवेश वाया मॉरिशस करते हैं। केन्द्र सरकार की औद्योगिक नीति एवं प्रोन्नयन के पास उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार अप्रैल २००० से अब तक भारत में कुल ८१ अरब डालर के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में से ३५.१८ अरब डालर का निवेश मॉरिशस के रास्ते हुआ है। दूसरे स्थान पर अमेरिका से ७.५६ अरब डालर ब्रिट्रेन से ७.७२ अरब डालर एवं जर्मनी से २.१४ अरब डालर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हुआ है। भारत के प्रमुख कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिसमें १०० प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमन्य सीमा है इसमें वित्तीय कम्पनियां, हवाई अड्डों का आधुनिकीकरण, निर्माण विकास योजनाएं, पेट्रोलियम कोयला खनन, थोक व्यापार, लघु उद्योग के लिए व्यापार विद्युत, औषधियां, सड़क बन्दरगाह, होटल, पर्यटन, चाय उद्योग, प्रिन्ट मीडिया, कृषि, काफी, रबर, विदेशी समाचार-पत्रों का प्रकाशन, खतरनाक रसायन, गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं सिंगल ब्रान्ड रिटेल, सिगार विशेष आर्थिक क्षेत्र इत्यादि। जिनमें ५० से ७५ प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमन्य सीमा है वे हैं - निजी क्षेत्र की बैंकिंग, विपणन, उपग्रहों की स्थापना एवं संचालन और जिनमें ५० प्रतिशत से कम की अनुमन्य सीमा है वे हैं सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकिंग, बीमा कंपनी २६ प्रतिशत की सीमा थी जो २००८ में ४९ प्रतिशत बढ़ाने की अनुशंसा है सार्वजनिक क्षेत्र की रिफाइनरियां, बुनियादी ढांचा एवं सेवा क्षेत्र, शामिल हैं। केवल एक क्षेत्र विज्ञापन एवं फिल्म ही ऐसा क्षेत्र है जहां ७४ प्रतिशत से १०० तक एफ. डी.आई. की अनुमन्य सीमा है और मल्टी ब्रांड रिटेल में ५१ प्रतिशत की अनुमन्य सीमा है। उपर्युक्त सभी क्षेत्रों की अनुमन्य सीमा से ज्ञात होता है कि भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में प्रत्यक्ष

❑ सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

विदेशी निवेश का बोलबाला है। इन सभी क्षेत्रों में कितना लाभ होगा इस निवेश से कहा नहीं जा सकता है। कुछ क्षेत्रों में सरकार ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति नहीं दी है- वे क्षेत्र हैं परमाणु ऊर्जा, लाटरी, व्यापार, सट्टा बाजार, चिट फण्ड व्यापार इत्यादि।

२००७-०८ से २०११-१२ तक भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को देखा जाए तो सबसे ज्यादा निवेश २०११-१२ में ही ४६.८ अरब डालर का किया है २००७-०८ एवं २०१०-११ में यह एक जैसा ३४.८ अरब डालर का रहा है और १९९१ से मार्च २००७ तक की स्थिति में भारत की एफ.डी.आई. में शीर्षस्थ १० देशों के हिस्से में भी मॉरिशस देश की अर्न्तप्रवाह राशि १८१४६.८१ मिलियन डालर सबसे ज्यादा रही है और भारत में स्त्रोत बार एफ.डी.आई. अर्न्तप्रवाह भी १० देशों में मॉरिशस का ३३०,०५७.४५ करोड़ अप्रैल २००० से २०१२ के बीच सबसे ज्यादा रहा है अर्थात् भारत में एफ.डी.आई. के संबंध में मॉरिशस का महत्वपूर्ण स्थान है और यदि भारत में भौगोलिक क्षेत्रवार एफ.डी.आई. के अर्न्तप्रवाह का विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होता है कि अप्रैल २००० से २०१२ तक सबसे ज्यादा मुम्बई जिसमें महाराष्ट्र दादरा व नगर हवेली, अण्डमान एवं दीप में २८२.१७९ करोड़ रु. का रहा है। दूसरे स्थान पर नई दिल्ली में १९७.०६१ अर्न्तप्रवाह रहा और क्रमशः कुछ राज्यों की तुलना करें तो पाते हैं कि यह भोपाल म.प्र. छत्तीसगढ़ में ४.४३५ करोड़ रु. कोच्चि, केरल लक्ष्यद्वीप में ४.२५९ रु., पणजी गोवा में ३.५४४ करोड़ रु., जयपुर राजस्थान में ३.१२२ करोड़ रु., कानपुर उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड में १,५७२ करोड़ रु., गुवाहाटी के विभिन्न राज्यों को मिलाकर ३८४ करोड़ रु. और पटना, बिहार, झारखण्ड में सबसे कम १७० करोड़ रु. अर्न्तप्रवाह दर्ज किया गया है। उपर्युक्त आंकड़े बताते हैं कि भारत के विभिन्न राज्यों में एफ.डी.आई. का अर्न्तप्रवाह (कम या ज्यादा) करोड़ों रु. का हो रहा है निश्चित ही भारत को इससे लाभ हो रहा है अभी तक दो दिस. २०१२ तक भारत के विभिन्न राज्यों में कुल ८६७.२४३ करोड़ रु. का अर्न्तप्रवाह हुआ है। इतना सब होने के बाद भी भारत की स्थिति बिगड़ रही है यह खुलासा अंकटाड की विश्व विकास रिपोर्ट २०११ में किया गया है। जुलाई २०११ में जारी इस रिपोर्ट में बताया गया है कि वर्ष २०९ में एफ.डी.आई. निवेश का अर्न्तप्रवाह ३६ अरब डालर था जो घटकर २०१० में २५ अरब डालर ही रहा है इससे एफ.डी.आई. प्राप्तकर्ता देशों में भारत था स्थान जो २००९ में आठवां था २०१४ में १४ वां रहा है[४] अर्थात् रिपोर्ट के अनुसार भारत को एफ.डी.आई. के मामले में सख्त कदम उठाने चाहिए ताकि विश्व में वह अपने स्थान को बनाए रखे, क्योंकि विवेकानंद के अनुसार उसे भविष्य में जगतगुरू के रूप में कार्य करना होगा।

भारत के संबंध में एफ.डी.आई. का एक आकलन करें तो पाते हैं कि भारत को इससे जहां लाभ की संभावनाएं नजर आ रही हैं वहीं कुछ हानियों पर भी दृष्टिपात करना होगा। बहुराष्ट्रीय निगमों से भारत ने कई लाभ जैसे - प्राकृतिक साधनों का दोहन, मूलभूत क्षेत्रों का विकास रोजगार एवं विपणन में योगदान औद्योगिक विकास तकनीकि सुधार अनुसंधान निर्यातों में वृद्धि की है।[५] वहीं एफ.डी.आई. के लाभ भी प्राप्त हो रहे हैं जैसे - कम से कम जोखिम और प्राप्त लाभ अधिक, राजनीति भ्रष्टाचार के प्रभाव में कमी, निवेशकों को अतिरिक्त लाभ, नवीन तकनीक का प्रयोग, पुरानी प्रथाओं में नवाचार, वित्त पोषण की सुविधा से नए उपकरणों की प्राप्ति, जीवन को बेहतर बनाने के लिए अच्छे रोजगार कम्पनी की अन्य सुविधाएं उपलब्ध हो जाना, सरकार को करों की प्राप्ति, देश में अस्थिरता की भरपाई हो जाना इत्यादि।[६] इन लाभों के साथ ही हाल ही में सरकार ने विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (केयर) और मल्टी ब्रान्ड रिटेल सेक्टर का नियमन करने वाली एफ.डी.आई. गाइडलाइंस में संशोधन भी किये हैं।[७] संशोधन का असर क्या होगा यह तो भविष्य में ही पता चलेगा। एफ.डी.आई. के लाभों को नकारा नहीं जा सकता है क्योंकि इससे भारत के आर्थिक विकास को बल मिला है। परन्तु इससे कई हानियों का भी सामना करना पड़ रहा है जैसे- देश में विदेशी कम्पनियों का वर्चस्व हो जाना चिन्ता का विषय है और देशी उद्योगों को खतरा बढ़ता जा रहा है, राजनीति के प्रभाव को कम कर रहा है।[८] कोई भी तकनीक को अपनाकर लाभ प्राप्त करना देश के कुशल श्रमिकों का विनियोजन, कम उपयोगी सामान को स्थानीय बाजारों में बेचना इत्यादि।[९] इन हानियों को कम किया जा सकता है और देश को एफ.डी.आई. से होने वाले लाभ के मार्ग को प्रशस्त्र किया जा सकता है। इस संबंध में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:-

(१) प्रथम सबसे जरूरी कदम है कि जिन क्षेत्रों में एफ.डी.आई. को १०० प्रतिशत निवेश की पात्रता है उसमें कुछ क्षेत्रों को छोड़कर फोर्टफोलियों के तहत निवेश की

अनुमति प्रदान करना।

(२) जिन क्षेत्रों को सुरक्षित रखा गया है और एफ.डी. आई. की अनुमति नही है उसमें भी कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जो फोर्टफोलियो के तहत सरकार द्वारा एफ.डी.आई. की अनुमति प्राप्त होती है तो शायद लाभ की संभावनाएं बढ़ सकती हैं।

(३) स्थानीय उद्योगों के माध्यम से विदेशी उपक्रमो को वित्त की व्यवस्था वैसी न की जाए जैसे स्थानीय उद्योगों के लिए होती है।

(४) विदेशी कम्पनियों की प्रतियोगिता से बचने के लिए देशी कम्पनियों के लिए कुछ अलग इंतजाम किये जायें।

(५) निगरानी तंत्र की स्थापना की जानी चाहिए। यथा संभव एफ.डी.आई. के निवेश से घोषित उद्देश्य की पूर्ति हो सके। देय एफ.डी.आई. के पाश्वेत्तर प्रयत्नों और परिणामों का आकलन होता रहे ताकि एफ.डी.आई. विकास की सहभागी सिद्ध हो सकें।

(६) उचित मूल्यांकन एफ.डी.आई. के लिए जो मानदण्ड निर्धारित किये हैं या प्रयत्न रहे कि उसका समुचित उपयोग हो सके।

(७) आय-व्यय विषयक आंकड़ों एवं सूचनाओं हेतु सन्दर्भ कक्ष की स्थापना की जाए।

उपर्युक्त वर्णित एफ.डी.आई. का समस्त आकलन, लाभ-हानि, सुझाव के उल्लेख के साथ यह आशा की जा सकती है कि एफ.डी.आई. से भी अन्य विकासात्मक सुधारों की भांति उल्लेखनीय परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

सन्दर्भ

१. पाण्डेय आनंद कुमार, श्रीमती अर्चना पाण्डेय 'सामान्य अध्ययन', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, २०१३, पृ. १६३

२. माहेश्वरी पी.डी., 'नई आर्थिक नीति', कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, २०१३, पृ. ४६४

३. मामोरिया चतुर्भुज, एस.सी. जैन, 'भारतीय अर्थशास्त्र', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, २०१०, पृ. ४६५

४. प्रतियोगिता दर्पण, 'भारतीय अर्थव्यवस्था', अतिरिक्त विशेषांक, दिल्ली, २०१३, पृ. २२२-२२३

५. जैन एस.सी., 'औद्योगिक अर्थशास्त्र', कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, २०१३, पृ. ४८७

६. लौगांनी प्रकाश और अशरफ राजिन, 'देश के विकास के लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कैसे फायदेमंद है', अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष वित्त विकास पत्रिका जून २००१ (इन्टरनेट)

७. दैनिक भास्कर, दिनांक १६.१०.२०१३

८. गुप्ता शीलचन्द, 'भारत में आर्थिक पर्यावरण', कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, २०१३, पृ. ५०६-५१०

९. दत्त गौरव एवं अश्विनी महाजन, 'भारतीय अर्थव्यवस्था', रामनगर, नई दिल्ली, २०१३

महिला सशक्तीकरण एवं ग्रामीण विकास

❑ डॉ. अंजना चतुर्वेदी

ऐसा कहा जाता है कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है एवं स्त्रियाँ (महिलाऐं) उसकी धुरी हैं। भारतीय शासन तंत्र ने ग्राम विकास के साथ ही महिला सशक्तीकरण के लिए भी प्रयास किया है ताकि महिला वर्ग को भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत महिला सशक्तीकरण हेतु शासन द्वारा किए गए प्रयासों का विवेचन किया गया है।

आज के इस बदलते परिवेश में महिलाऐं प्रत्येक क्षेत्र में अपनी योग्यता, गुणवत्ता, शिक्षा और कार्य कुशलता के आधार पर पुरूषों के बराबर कार्य कर रही हैं। यद्यपि ''महिला'' होने के नाते उनकी कई सीमाऐं हैं फिर भी वे कई मायनों में पुरूषों की अपेक्षा ज्यादा गुण रखती हैं। महिलाओं में धैर्य, सभ्यता, नम्रता और विभिन्न परिस्थितियों में अपने को ढाल कर, घुल-मिलकर रहने की सामर्थ पुरूषों की तुलना में कहीं ज्यादा होती है। वे अपने माता-पिता के परिवार से हटकर दूसरे परिवार में भी उसी अपनत्व की भावना से रह लेती हैं, जितना अपने परिवार में रहती थीं। घर परिवार की आवश्यकताओं को देखते हुए इतने लचीलेपन से कम या ज्यादा संसाधनों को देखते हुए प्रबंधन का उदाहरण देती है, जितना पुरूषों में अक्सर देखने को नहीं मिलता।

महिला बचपन से ही एक अच्छे प्रबंधक के रूप में कार्य करती है क्योंकि घर रूपी इकाई या संस्था का प्रबंधन न केवल वे अपनी आर्थिक स्थिति, सामाजिक वातावरण, पारिवारिक परिस्थिति आदि के आधार पर करती है, बल्कि आपसी सामन्जस्य और तनावपूर्ण स्थिति को ध्यान में रखकर प्रबंधन के लिए काफी अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। पूर्वकाल में महिलाओं को एक कमजोर इकाई मानकर उनका कार्य क्षेत्र घर गृहस्थी तक ही सीमित होकर रह गया था। हमारे देश में महिलाओं का स्थान पुरूषों की अपेक्षा गौड़ होने के कारण भी उनका कार्य क्षेत्र सीमित ही रहा। इस मिथक को टूटने में कि - 'महिलाओं का कार्य सिर्फ घर गृहस्थी संभालना है', एक लम्बा समय लगा, परंतु आज इस दीवार को महिलाओं ने अपनी कार्य क्षमता से गिरा दिया हैं। जिस प्रकार परिवार के सर्वांगीण विकास के लिए महिला एवं पुरूषों दोनों का कार्य करना या आत्म निर्भर होना आवश्यक है, उसी तरह देश के आर्थिक विकास के लिए ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों का विकास होना आवश्यक है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भी महिलाओं की आत्मनिर्भरता एवं ग्रामीण विकास में संबंध के महत्व को प्रतिपादित करना है।

सामान्य रूप से ग्रामीण विकास के लिए तीन बातें मुख्य होती हैं :- स्वास्थ्य, शिक्षा, बिजली, पानी यानी मूलभूत आवश्यकताओं को उपलब्ध कराना, गरीबी निवारण एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना, ग्रामीण विकास की आवश्यक शर्त है तथा ग्रामीण क्षेत्रों को देश की मुख्य धारा में जोड़ना अर्थात् नीति निर्धारण में सहभागिता हेतु जागरूक करना आवश्यक कार्य है।

१९५२ में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर इसकी शुरूआत की गई।[१] प्रथम पंचवर्षीय योजना १९५१ से ५६ तक जहाँ कृषि प्रधान थी, द्वितीय योजना १९५६ से ६१ में औद्योगीकरण पर ज्यादा जोर दिया गया। इस कारण प्रथम योजना का कृषि विकास कुछ ठहरा परंतु तृतीय योजना १९६१ से ६६ में पुनः कृषि पर बल देने के परिणाम परिलक्षित होने लगे और ग्रामीण विकास हेतु द्वितीय योजना में भी- खादी एवं ग्रामोद्योग कार्यक्रम (१९५७), ग्रामीण आवासीय योजना (१९५७), बहुउद्देश्यीय अनुसूचित जाति विकासखंड कार्यक्रम (१९५७), विशेष पैकेज कार्यक्रम (१९६०), गहन जिला कृषि कार्यक्रम (१९६०) से ग्रामीण स्वरूप बदलने लगा।[२] कृषक प्रशिक्षण एवं शिक्षा कार्यक्रम (१९६६), ट्यूबवेल निर्माण (१९६६), चौथी योजना (१९६९-७४) में ग्रामीण जन शक्ति कार्यक्रम (१९६९), ग्रामीण रोजगार योजना (१९७१), ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (१९७२)। पांचवी योजना (१९७४-७९) में कृषि श्रमिक योजना (१९७३), कृषक विकास (१९७४)[३] तथा ग्रामीण विकास हेतु लगातार आठवीं योजना तक (१९९२-९७) तक प्रयास जारी रहे।

ग्राम विकास के इन्हीं प्रयासों में स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (१९९९) तथा संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (२००१)[४] एक मील का पत्थर साबित हुई हैं। इन्हीं विकास कार्यक्रमों को लगातार ग्यारहवीं योजना तक विस्तार दिया जाता रहा है। ऐसा कहा जाता है कि भारत की आत्मा गांवों में बसती

❑ सहायक प्राध्यापक-अर्थशास्त्र, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

है एवं स्त्रियाँ (महिलाऐं) उसकी धुरी है। भारतीय शासन तंत्र ने ग्राम विकास के साथ ही महिला सशक्तीकरण के लिए भी प्रयास किया है ताकि महिला वर्ग को भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके।

भारत में ग्रामीण अंचल एवं महिला वर्ग हेतु किए जा रहे प्रयासों के परिणामस्वरूप प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं का योगदान परिलक्षित हो रहा है। भारत की श्रम शक्ति में महिला श्रमिकों का एक प्रमुख हिस्सा है, लेकिन रोजगार के स्तर व गुणवत्ता की दृष्टि से वे पुरूषों से पीछे रह जाती है। भारत में जनगणना (२००१) के अनुसार महिला श्रमिकों की संख्या २५.६० प्रतिशत यानी देश की कुल ४६ करोड़ ६० लाख, महिलाओं में से १२ करोड़ ७२ लाख २० हजार महिलाऐं श्रमिक हैं। अधिकांश श्रमिक महिलाऐं ग्रामीण क्षेत्रों से हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों की ८७ प्रतिशत महिलाऐं खेतीहर मजदूर हैं, जबकि शहर की ८० प्रतिशत घरेलू उद्योग छोटे-छोटे व्यवसायों नौकरी तथा भवन निर्माण जैसे असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत है।[५]

सरकार द्वारा २० मार्च को महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति लागू की गई।[६] इस योजना का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति विकास एवं सशक्तीकरण को सुनिश्चित करना है और महिलाओं के साथ हर तरह का भेदभाव समाप्त कर यह सुनिश्चित करना है कि वे जीवन के हर क्षेत्र में, हर गतिविधि में खुलकर भागीदारी करे।

इन्हीं लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु पहला कदम नालसा ने अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस (८ मार्च) के अवसर पर इण्डिया गेट अमर जवान ज्योति पर शांति एवं विवादों के समाधान के लिए महिलाओं की प्रार्थना सभा आयोजित की। यह लिंग एवं समानता एवं सामाजिक विकास के जरिए न्याय के लिए महिलाओं की आवाज बुलंद करने के उद्देश्य से हो रहा है।

भारत में विकास योजना की प्रक्रिया में आरंभ से ही महिलाओं की ओर ध्यान देने का प्रयास किया गया। अन्याय पूर्ण सामाजिक ढांचे को तोड़ने और देश के प्रत्येक हिस्से में महिलाओं को सामाजिक-राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में उनका उचित स्थान दिलाने के लिए कार्य सूची में महिलाओं को सामर्थवान बनाना सबसे बड़ा मुद्दा है, जिसके लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारें विभिन्न प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वयन कर रही है।

महिला सामाख्या योजना - महिला सशक्तीकरण हेतु १९८९ में आर्थिक रूप से कमजोर एवं पिछड़े वर्ग की महिलाओं की शिक्षा हेतु शुरू की गई।[७]

लाड़ली लक्ष्मी योजना - म.प्र. में बालिकाओं के प्रति भेदभाव समाप्त करने हेतु अप्रैल २००७ में शुरू हुई जो प्रत्येक स्तर पर शिक्षा हेतु एक किश्त एवं २१ वर्ष पूर्ण करने पर एकमुश्त राशि अर्थात लगभग १ लाख रूपये प्रदान करती है।

ऊषा किरण - घरेलू हिंसा के विरूद्ध संरक्षण अधिनियम २००६ - महिला सुरक्षा हेतु चलाई गई योजना।

स्वयं सिद्धा - अति गरीब महिलाओं को प्रसव पूर्व सहायता हेतु।

अन्न प्राशन - छः माह की बालिका का महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा अन्नप्राशन किया जाता है।

बालिका शिक्षा - बालिकाओं को गणवेश, पुस्तकें एवं साइकिल प्रदान करने हेतु।

कन्या दान - गरीब, अनाथ, निर्धन परिवार की कन्याओं हेतु विवाह संपन्न हेतु।

भ्रूण लिंग परीक्षण पर प्रतिबंध - दण्ड का प्रावधान सूचना देने वाले को १० हजार का इनाम।

गोद भराई - गर्भवती महिलाओं की स्वास्थय रक्षा हेतु।

स्वसहायता समूह, ममत्व मेला, समर्थ योजना इत्यादि अनेक योजनाऐं सरकार द्वारा संचालित की जा रही है।[८]

महिलाओं के विकास हेतु किए जा रहे प्रयासों से कुछ वर्षों से वातावरण में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। भारतीय व्यवस्था ऐसी रही है जहाँ घर एवं बाहर दोनों इकोनोमी पुरूषों की इच्छा पर ही निर्भर हुआ करती थी, कारण पुरूष वर्ग का कमाना, अधिक शिक्षित होना तथा अधिकांश महिलाओं की यह सोच की पुरूषों की निर्णायक क्षमता बेहतर होती है। इसलिए बाजार अभी तक पुरूष वर्ग के हिसाब से अपनों को तैयार करता था परंतु अब परिस्थितियाँ परिवर्तित हो रही हैं क्योंकि महिलाऐं आत्म निर्भरता के साथ निर्णायक भूमिका का निवर्हन कर रही हैं क्योंकि शिक्षा का स्तर बढ़ रहा है एवं समाज का स्वरूप तथा सोचने का तरीका भी। **यूनीसेफ** के सर्वे के अनुसार प्राथमिक कक्षा में अब ८१ प्रतिशत लड़कियों का एनरोलमेंट होने लगा है जो स्त्री शिक्षा के बढ़ने का महत्वपूर्ण सूचक है।[९]

२००१ में भारत में जहाँ शहरी महिलाओं की आय ४,४४२ रूपये थी २०१० में बढ़कर ६,४५७ रूपये हो गई है।[१०]

अतः ग्रामीण एवं शहरी विकास में महिलाऐं महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है तथा प्रत्येक क्षेत्र में अपनी योग्यता

का लोहा मनवा रही है। महिलाओं के ऊपर हो रहे विभिन्न सर्वेक्षण भी यह तथ्य उजागर कर रहे है कि आने वाले १० सालों में बाजार का अधिकांश हिस्सा महिलाओं के हाथ में होगा। इकानोमी के इस बदलाव को विशेषज्ञ शी-कोनामी का नाम दे रहे है। भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की आय बढ़ने से विकसित देशों की अपेक्षा ज्यादा फायदे हैं। यहाँ महिलाओं के आत्म निर्भर होने से परिवार का स्तर ऊपर उठा है, क्योंकि पश्चिमी देशों में महिलाऐं अपनी आय का बड़ा हिस्सा धूम्रपान, जुआ, अल्कोहल पर खर्च करती है। भारतीय महिलाओं में आमतौर पर यह प्रचलन नहीं है। **अतः** ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं हेतु यदि किए जाने वाले प्रयास तीव्र किए जावे तथा उनका व्यापक प्रचार-प्रसार कर उन्हें जागरूक किया जाता है तो ग्रामीण विकास में महिला शक्ति अपनी अभूतपूर्व योगदान देकर विकास की गति तीव्र करने में सहभागी होगी।

सन्दर्भ

१. राठौर गिरवर सिंह, 'भारत में पंचायती राज',पंचशील प्रकाशन जयपुर, २००४, पृ. १८

२. प्रतियोगिता दर्पण मार्च, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा, २०१० पृ. १४४१

३. वही, १४४१

४. वही, १४४१

५. प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्त १५ २००८, पृ.५३

६. Women & Child Dev. Dep. MP; MP Co-operative Office Bhopal

७. गौतम राकेश, जितेन्द्र सिंह भदौरिया, 'म.प्र. एक परिचय', मेकग्रा हिल, दिल्ली, पृ. २०-१

८. वही २०-३

९. दैनिक भास्कर - रसरंग, जयपुर, ४ अगस्त २०१३

१०. वही

भारत में महिला सशक्तीकरण : एक समाजशास्त्रीय अवलोकन

❑ रूकमणी मीणा

''यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता''

मनुस्मृति के इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि देवताओं के रमण का काल सम्भवतया नारी के इतिहास का स्वर्णिम काल रहा होगा। मनुस्मृति के परवर्ती काल में नारी की यह स्थिति दृष्टिगोचर नहीं होती है। परवर्ती ऐतिहासिक वर्णनों से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि वैदिक काल के पश्चात् मानव समाज में ऐसी सांस्कृतिक संस्थाओं और सामाजिक मूल्यों का विकास हुआ जिन्होंने नारी के अस्तित्व एवं प्रस्थिति पर अनेकों प्रश्नचिन्ह लगा दिये। इस प्रकार नारी को देवी का स्वरूप समझने वाले पितृसत्तात्मक समाज ने घर की चार दीवारी के अन्दर व बाहर धर्म, संस्कारों एवं प्रतिष्ठा के नाम पर ऐसे बंधन लगाये है जिन्हें पूर्णरूपेण तोड़कर स्वयं को सशक्तीकृत करना उसके लिए अभी तक सम्भव नहीं हुआ है।[२]

महिला सशक्तीकरण एक विश्वव्यापी प्रश्न है जो सामाजिक न्याय, क्षमता, समानता एवं समग्र सामाजिक विकास पर आधारित अवधारणा है। सशक्तीकरण से तात्पर्य अधिकार लेने या देने से नहीं है वरन् कानून व नीति निर्माण की प्रक्रिया की क्रियान्विति में सहभागिता, निर्णय लेने व नियंत्रण करने की शक्ति का परिवर्तनशील कार्यों की ओर अग्रसर होना एवं जागरूकता व सामर्थ्य निर्माण की एक प्रक्रिया है। प्रस्तुत लेख भारतीय समाज में महिलाओं की प्रस्थिति की अतीत से वर्तमान तक की समाख्या है कि किस प्रकार से वैदिक युग की स्वतंत्र व स्वछन्द नारी गृहकार्य में कैद होकर रह गई और समाज में पुरूष की तुलना में उसकी प्रस्थिति द्वितीयक हो गई तथा समाज की उन सांस्कृतिक संस्थाओं और सामाजिक मूल्यों पर आधारित है जिन्होंने नारी के अस्तित्व एवं प्रस्थिति पर अनेकों प्रश्नचिन्ह लगा दिये।

सशक्तीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है जो व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को इस योग्य बनाने का प्रयास करता है कि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र/कार्यों में पूर्ण अस्मिता तथा शक्तियों को प्राप्त कर सकें। यदि किसी भी समाज में स्त्री-पुरूष असमानता के बीज विद्यमान हैं तो यह उस समाज के समग्र विकास के लिए कैसे यथोचित है?[३]

किसी भी राष्ट्र या समाज के समग्र एवं सन्तुलित विकास के लिए महिला वर्ग का राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ा होना परमावश्यक है। देश की आधी आबादी की पूर्ण सक्रियता एवं सहभागिता ही संबंधित समाज के समूचे विकास की पूर्व शर्त है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए अमेरिकी विद्वान टॉक विल का कथन है कि अमेरिकी महिलाओं की सर्वोपरिता ही अमेरिकी लोकतंत्र की सुदृढ़ता एवं समृद्धि का प्रमुख आधार है।''[४]

अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक "Indian Economic Development and Social Opportunity" में लिखा है ''महिला सशक्तीकरण से न केवल महिलाओं के जीवन में निश्चित रूप से सकारात्मक असर पड़ेगा बल्कि पुरूषों और बच्चों को भी इससे लाभ मिलेगा। इसलिए राष्ट्र का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास शासन की गुणवत्ता एवं महिलाओं की सक्षमता दोनों पर निर्भर करता है।''[५]

प्रारम्भिक काल में भारतीय समाज में स्त्रियों को अनेकों अधिकार व प्रतिष्ठा प्राप्त थी। वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल के पश्चात् समाज की मौलिक अवस्थाओं का स्थान रूढ़ियों ने ले लिया, इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों का सम्मान और उनके अधिकार कम होते चले गये। पुरूष प्रधान समाज स्त्रियों के अधिकारों का हनन करता गया और कभी सांस्कृतिक मूल्यों और कभी परम्पराओं के नाम पर स्त्री का शोषण होता चला गया और इन सबके परिणामस्वरूप स्त्रियों की प्रस्थिति दिन-प्रतिदिन बद् से बदतर होती चली गई।[६] रूढ़ियों एवं परम्पराओं को धर्म के ज्ञाताओं एवं स्मृतिकारों का सहयोग मिलने से स्त्रियां धीरे- धीरे पराधीन, असहाय और निर्बल हो गईं तथा समाज में स्त्री की प्रस्थिति पुरूष की तुलना में द्वितीयक हो गई। पुरूष ने स्त्री के पारिवारिक अधिकार सीमित कर दिये और स्वयं का प्रभुत्व स्थापित कर लिया।[७]

मध्यकाल में भारतीय समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति सर्वाधिक शोचनीय रही। विदेशी आक्रमणजन्य असुरक्षा ने बाल विवाह, सती प्रथा, जौहर व पर्दा प्रथा जैसी तमाम कुरीतियों को जन्म दिया। वैदिक युग की 'स्वतंत्र' एवं 'स्वछन्द' नारी गृहकार्य में कैद होकर रह गई। रही सही कसर ''ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।'' जैसे विशेषणों का

❑ व्याख्याता, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, करौली (राज.)

प्रयोग करते हुए तुलसीदास जैसे मनस्वियों ने पूरी कर दी। किन्तु धीरे-धीरे समय के साथ बदलाव आया और समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति में पुनः सुधार प्रारम्भ होने लगा है। महिलाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने हेतु सामाजिक व वैधानिक दोनों ही स्तरों पर समाजसुधारकों व महिला आन्दोलनों ने गम्भीर प्रयास किये।

महात्मा गांधी ने हिन्द स्वराज्य में लिखा "जब तक आधी मानवता के आंखों में आंसू हैं, मानवता पूर्ण नहीं कही जा सकती"[८] इसी के साथ स्वतंत्रता व समानता पर आधारित लोकतांत्रिक मूल्यों की बयार ने भी महिलाओं को घर की दहलीज से निकालकर विश्व पटल पर स्थापित कर दिया। नीति नियामक स्तर पर यह भी महसूस किया गया कि बिना आधी आबादी की भागीदारी के किसी भी लोकहितकारी कार्यक्रम की शत प्रतिशत सफलता सुनिश्चित नहीं है।

साहित्यिक स्तर पर छायावादी युग के जयशंकर प्रसाद ने उद्घोषित किया-

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।"[९]

महिला सशक्तिकरण के तमाम अभियानों और आन्दोलनों का ही परिणाम था कि २०वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सिरिमावो भण्डारनायके, गोल्डा मायर, मार्ग्रेट थेचर, इन्दिरा गांधी एवं बेनजीर भुट्टों जैसी वैश्विक विभूतियां देखी गईं। किन्तु तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। कुछ अपवादों को छोड़कर सत्ता और समाज में बढ़ती भागीदारी सामन्तवादी पितृसत्तात्मक मानसिकता व पुरूषोचित अहम को रास नहीं आई। महिलाओं के विरूद्ध दिन-प्रतिदिन बढ़ते अपराध के आंकड़े इसकी पुष्टि करते हैं।

वर्तमान में स्थिति इतनी चिन्ताजनक है कि बरबस ही होठों से शब्द निकल पड़ते है :-

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध और आंखों में पानी"

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार भारतीय महिलाओं की पोषण, साक्षरता व लिंगानुपात तीनों में ही अत्यन्त शोचनीय प्रस्थिति है। वैश्वीकरण के इस युग में भी कन्या जन्म अधिकांश घरों में उल्लास नहीं जगाता है, इसी के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय लिंगानुपात ६४३ व उसमें में भी ०-६ आयु वर्ग का लिंगानुपात ६२७ ये घटकर २०११ की जनगणना में मात्र ६१६ का ही रह गया है। इसी प्रकार ७४.०४ प्रतिशत राष्ट्रीय साक्षरता में पुरूषों की ८२.१४ प्रतिशत के मुकाबले महिला साक्षरता मात्र ६५.४६ प्रतिशत है।

भारत में महिलाओं की प्रस्थिति : एक दृष्टि

जनसंख्या (२०११)	:	५८६४६६१७४
कुल जनसंख्या में प्रतिशत (२०११)	:	४८.४७
लिंगानुपात (२०११)	:	६४३
०-६ आयु वर्ग में लिंगानुपात	:	६१६
साक्षरता दर (२०११)	:	६५.४६
महिला कामगार सहभागिता दर (२००६-१०)	:	ग्रामीण : २६.१
		शहरी : १३.८
मातृत्व-मृत्यु दर (प्रति १००० जीवित जन्म)	:	२१२
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (२००२-०६)	:	६४.२ वर्ष
शिशु मृत्यु दर महिला (२०१०)	:	४६ (प्रति हजार जीवित जन्म)
विवाह के समय औसत आयु	:	२० वर्ष
केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में महिलाएं (२०१२)	:	७४ में से ८
सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश (२०१२)	:	२६ में से २
उच्च न्यायालयों में न्यायाधीश (२०१२)	:	६३४ में से ५४
लोक सभा में सांसद	:	६ प्रतिशत

स्त्रोत प्रतियोगिता दर्पण फरवरी २०१३

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के मानव विकास सूचकांक के अनुसार प्रत्येक एक लाख बच्चों के जन्म पर ४५० माताओं की मौत हो जाती है। ०-५ आयु वर्ग की बाल मृत्यु दर में भी भारत का प्रथम स्थान है। केवल २७ प्रतिशत लड़कियां ही माध्यमिक व उच्च शिक्षा ग्रहण कर पाती है। स्वतंत्रता व समानता का उद्घोष करती भारतीय संसद में मात्र ६ प्रतिशत महिलाएं ही हैं। श्रम बाजार में जहां पुरूष भागीदारी ८५ प्रतिशत तक है, वहीं महिला भागीदारी ३६ प्रतिशत से अधिक नहीं है। अमेरिका की साप्ताहिक पत्रिका न्यूजवीक की सितम्बर २०११ की रिपोर्ट के अनुसार न्याय, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा आर्थिक, राजनैतिक पैमानों पर भारतीय महिलाओं की प्रस्थिति निम्न है। (१६५ देशों में १४१ वें स्थान पर) इसी प्रकार लैंगिक असमानता सूचकांक में १३८ देशों में भारत का १२२वां स्थान है। स्थिति यहीं नहीं रूकती, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरों के अनुसार देश में प्रत्येक

६२ मिनट पर एक दहेज हत्या व प्रत्येक १६ मिनट पर एक बलात्कार की रिपोर्ट दर्ज हो रही थी। अकेले दिल्ली में ही २०११ में छेड़छाड़ की ६५३ व बलात्कार की ५०८ घटनाएं घटीं। राजधानी दिल्ली के हालात का अन्दाजा तो १२ दिसम्बर २०१२ की रात दामिनी गैंग रेप से लगाया जा सकता है। जब राजधानी दिल्ली का यह हाल है तो शेष देश में महिलाओं की स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता हैं।

घरेलू हिंसा के तौर पर देखा जाए तो महिलाओं की प्रस्थिति कितनी बदतर है कि २००५ में संसद को घरेलू हिंसा निवारक अधिनियम पारित करना पड़ा। लेकिन यह विचारणीय बिन्दु है कि क्या कानून बना देना पर्याप्त है? कानून बनने के बाद भी घरेलू हिंसा में ३० प्रतिशत वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य की सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार ३७ प्रतिशत महिलाएं गम्भीर पारिवारिक हिंसा की शिकार हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार २००६ में वैश्विक आंतकवाद में मरने वालों की संख्या २२३१ थी तो वही भारत में घरेलू हिंसा में मरने वाली महिलाओं की संख्या ८३८३ थी।

यह प्रसन्नता का विषय है कि स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में महिलाओं की प्रस्थिति में भारत सरकार द्वारा वैधानिक स्तर पर कई कानून बनाये गये एवं जनहितकारी योजनायें व कार्यक्रम चलाये गये। भारत का संविधान महिला सशक्तीकरण एवं सुरक्षा हेतु निम्न प्रावधान प्रदान करता है-

- सभी व्यक्तियों के लिए कानून के समक्ष समानता (अनु. १४)।
- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या स्थान के आधार पर भेदभाव पर निषेध (अनु. १५ (१)) महिलाओं और बच्चों के लिए अनुच्छेद १५ (३) में विशेष प्रावधान।
- राज्य के अधीन किसी भी पद, रोजगार या नियुक्ति से सम्बन्धित समान अवसर (अनु. १६)।
- पुरूषों और महिलाओं के लिए सुरक्षित जीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराने का अधिकार (अनु. ३६ (ए))।
- समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार (अनु. ३६ (द))।
- स्थानीय निकायों में १/३ आरक्षण का प्रावधान (अनु. ३४३ (द)) और ३४३ (त)।

इसके अतिरिक्त घरेलू हिंसा अधिनियम २००५, पैतृक सम्पत्ति में अधिकार २००५, कन्या भ्रूण हत्या अधिनियम २००३, अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम २००६, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण अधिनियम २०१०, आपराधिक कानून विधेयक (संशोधित) २०१३, सती निवारण, बाल विवाह, हिन्दू वसीयत अधिनियम, विदेश विवाह अधिनियमों के माध्यम से विधिक सुरक्षा संरक्षा प्रदत्त कर महिलाओं के सशक्तीकरण के क्षेत्र में गम्भीर प्रयास हुए हैं।[१०]

इसके परिणामस्वरूप महिलाओं की प्रस्थिति में काफी परिवर्तन आया है। स्वाधीनता के पश्चात् वर्तमान में जो महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में देखने को मिलते हैं उनकी कल्पना तो कोई कर ही नहीं सकता था लेकिन एम.एन. श्रीनिवास ने "पश्चिमीकरण लौकिकीकरण और जातीय गतिशीलता को इन परिवर्तनों का प्रमुख कारण माना है।"[११] इसके साथ ही शिक्षा के प्रसार तथा औद्योगिकरण ने स्त्रियों को आर्थिक जीवन में प्रवेश करने के पर्याप्त अवसर दिये है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि महिला अत्याचारों का निदान मात्र कौमार्य या यौन शुचिता जैसे परम्परागत पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से कदापि नहीं किया जा सकता, इसके लिए स्त्री विमर्श व समस्या का नारीवादी विश्लेषण भी आवश्यक है, जिससे अब तक बचा जाता रहा है। उदाहरण के लिए बलात्कार व यौन हिंसा की कार्यवाही फास्ट ट्रेंक कोर्ट में शत प्रतिशत महिला वकीलों व जज की उपस्थिति में होनी चाहिए। बलात्कार के आरोपियों को बचाने के लिए पीड़िता के संदिग्ध चरित्र को जिरह का आधार बनाने के प्रयासों की सुप्रीम कोर्ट ने आलोचना की है। इस हेतु भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३७६ में सुधार की पर्याप्त गुजांइश है। एक दिन की हिरासत व अधिकतम सात वर्ष की सजा को बढ़ाकर आजीवन कारावास किया जाना चाहिए। हाल ही राजधानी में हुए दामिनी गैंगरेप के आरोपियों को मिली फांसी की सजा स्वागत योग्य है। दहेज हत्या ३०४बी में भी पर्याप्त संशोधन अपेक्षित है।

इसी के साथ मानव तस्करी (एंटी ह्यूमन ट्रेफिकिंग एक्ट) के प्रावधानों को भी कठोर बनाने की आवश्यकता है। सरल प्रावधानों की आड़ में जिस प्रकार हैदराबाद जैसे शहरों से हजारो बच्चियां खाड़ी देशों को निर्यात की जा रही हैं वो एक सभ्य समाज के नाम पर कलंक के सिवाय और कुछ नहीं है। इसी प्रकार आर्थिक विवशताओं के कारण मध्य प्रदेश के बाछंड़ा समुदाय की महिलाओं द्वारा सामूहिक वैश्यावृत्ति की परम्पराओं का समर्थन नहीं किया जा सकता। अतः इन समस्याओं के प्रभावी निदान की जरूरत है। महिलाओं को सम्मानजनक स्थान दिलाने के उद्देश्य से लोकसभा में विगत दिनों पेश कामकाजी महिलाओं विषयक यौन उत्पीड़न निरोधक अधिनियम में भी सुधार अपेक्षित

है। विधेयक में प्रयुक्त 'उद्यम' शब्द असंगठित क्षेत्र की मजदूर महिलाओं व घरेलू नौकरानियों को संरक्षण नहीं देता, जबकि कम प्रतिरोधक क्षमता के कारण वहीं उत्पीड़न का सरलता से शिकार बनती हैं। इस हेतु 'उद्यम' के दायरे में असंगठित क्षेत्र की महिलाओं को भी लाए जाने की जरूरत है।

समाज में कन्याओं की स्वीकार्यता कितनी है? यह इण्डिया टूडे की पंजाब और मध्यप्रदेश में कुंओं से दर्जनों मादा भ्रूण मिलने के खुलासे से स्पष्ट है। इस हेतु गम्भीर सामाजिक जागरूकता अभियान चलाने के साथ ही तमिलनाडु सरकार की Cradle Programme की सराहनीय पहल अन्य राज्यों के लिए भी एक अनुकरणीय उदाहरण है। कन्या बचाओं के इस कार्यक्रम के अन्तर्गत तमिलनाडु के अस्पतालों में पालने रखवा दिये गये थे, जिन पर लिखा था "Leave your unwanted babies in the cradle and we will take care of them in the bed"[12]. समाज में लिंग असमानता दूर करने के लिए आवश्यक है कि समाज अपनी मानसिकता में परिवर्तन लाए। समाज का विकास तभी ही संभव है जब महिला वर्ग सबल एवं सशक्त हो, लेकिन भारत में तमाम प्रयासों के बावजूद अभी भी महिला वर्ग की प्रस्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं आया है। संभवतः इसलिए महिला सशक्तीकरण वर्तमान समय की प्रबल आवश्यकता है। नीति एवं निर्णय निर्माण के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की समान सहभागिता ही उनका वास्तविक सशक्तिकरण है। अतः महिला सशक्तीकरण द्वारा विकास के लिए व्यक्तिगत स्तर पर जागरूकता से लेकर राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की अर्थपूर्ण भागीदारी अपेक्षित है। मात्र स्त्री-पुरूष समानता का नारा महिला सशक्तिकरण नहीं हो सकता है। अतः महिलाओं की परिवर्तित मानसिकता से समाज में लिंग समानता लाने के लिए यह आवश्यक है कि समाज यह समझे कि लिंग समानता के लिए आन्दोलन पुरूषों के अस्तित्व व अधिकारों के विरूद्ध नहीं है बल्कि समाज के विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति व संतुलित विकास के लिए आवश्यक हैं।

वही लिंग समानता के प्रयास, अनेकानेक रणनीतियों के संदर्भ में गांधीय रणनीति की यह अर्न्तदृष्टि समीचीन है कि स्त्री का 'स्त्रीत्व' उसके व्यक्तित्व, भूमिका एवं शक्ति का आधार है। आत्मशक्ति के बिना सशक्तीकरण स्थायी नहीं हो सकता, आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्णय के बिना चयन की स्वतंत्रता वस्तुस्थिति नहीं बन सकती। साथ ही, यह भी याद है जैसा ग्राम्शी ने कहा है कि वर्चस्व की प्रक्रिया जटिल एवं अप्रत्यक्ष भी होती है। अतः इसका मुकाबला आत्मशक्ति के साथ समूह शक्ति से ही किया जा सकता है।[13]

अन्त में नारी सशक्तिकरण, प्रतिकूल सोच, परिस्थितियों एवं घटनाओं के बावजूद भी इसकी निरन्तरता इस बात का प्रमाण है कि नारी समानता, विकास, शक्ति के प्रश्न सतहीं या आरोपित नहीं है बल्कि यथार्थ के धरातल की सच्चाई हैं, जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता, अनदेखा करने का अर्थ होगा धरातल के धराशाही होने की प्रक्रिया का सूत्रपात। खोखली नींव पर सुदृढ़ इमारत सुरक्षित नहीं हो सकती, इसलिए विषमता के यथार्थ का वस्तुगत आंकलन, विश्लेषण एवं समाधान समय रहते अपेक्षित हैं। हालांकि सरकारी प्रयासों के परिणामस्वरूप नारी समानता, विकास एवं शक्ति के संदर्भ में नवीन क्षितिज उभरते दिखाई दे रहे है, यद्यपि चुनौतियॉ भी कम नहीं हुई हैं। अतः गहराती बढ़ती चुनौतियों का सामना प्रभावी रचनात्मक संघर्ष द्वारा ही किया जा सकता है और यह मुकाबला केवल महिलाओं द्वारा ही नहीं अपितु महिला पुरूष दोनों को समूहगत स्तर पर करना होगा।

संदर्भ

१. मनृस्मृति - १३.४६
२. माथुर प्रियंका, 'महिला सशक्तिकरण', ज्योति प्रकाशन, जयपुर, २०१०, पृ. २४
३. कुमार नरेन्द्र सिंधी (लेख), 'नारीवाद की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में महिला विमुक्ति एवं सशक्तिकरण के व्यापक एवं भारतीय संदर्भ में विशिष्ट आयाम', उद्धृत आशा कौशिक, महिला सशक्तीकरण विमर्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, २००४ पृ. ३
४. विलियम मैथ्यू, 'ग्रांड वूमेन एण्ड माइलेटी : द डेमोक्रेटिक फेमिली इन टाकविल द रिव्यू ऑफ पोलिटीकल साइंस विटर', द यूनिवर्सिटी ऑफ नोट्डेम, इण्डियाना, १९९५,
५. प्रतियोगिता दर्पण (सितम्बर २००२) पृ. ३७४
६. देसाई नीरा, 'वूमेन इन मॉडर्न इण्डिया', वोरा एण्ड को. मुम्बई, १९५७, पृ. २५३
७. शर्मा प्रज्ञा, 'महिला विकास एवं सशक्तीकरण', आविष्कार पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, पृ. १०
८. महात्मा गांधी, 'स्त्रियों और उनकी समस्याएं', नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५१, पृ. १९२
९. प्रसाद जयशंकर, 'कामायनी', लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८९, पृ. ९८
१०. कुरूक्षेत्र वर्ष ५९ अंक १० अगस्त २०१३, महिला सशक्तीकरण का आत्मावलोकन पृ. ५
११. श्रीनिवास एम.एन., 'सोशियल चेन्ज इन माडर्न इण्डिया', यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया बर्कले, १९६६, पृ. १०
१२. प्रतियोगिता दर्पण, फरवरी, २०१३, पृ. १०९९
१३. कौशिक आशा, 'ग्लोबलाइजेशन डेमोक्रेसी एण्ड कल्चर - सिचुएटिंग गांधीयन आल्टरनेटिव्ज', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, २००२, पृ. ११७

श्री अरविन्द एवं अरस्तू के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

❑ संदीप पाण्डे

प्रस्तावना :- आज शिक्षा की आवश्यकता का महत्व प्रत्येक मनुष्य के लिये है। बिना शिक्षा के मानव को पूँछ विहीन पशु कहा गया है। कोई भी कठिनाई आने पर व्यक्ति अपने सीखे हुए ज्ञान के आधार पर उसका हल ढूँढता है। इसके साथ ही साथ बुद्धिजीवी वर्ग समाज की रीढ़ होता है। अपने कलात्मक सृजन और अभिव्यक्ति द्वारा बुद्धिजीवी सदैव से समाज का नेतृत्व करता आया है। राष्ट्र निर्माण में बुद्धिजीवियों ने अपनी बुद्धिमता से रचनात्मकता के विविध पुष्पों को पल्लवित कर राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक, तुलनात्मक तथा अन्य क्षेत्रों में उपलब्धियों और श्रेष्ठताओं के अद्वितीय आयाम स्थापित किये हैं।

> प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समाज, प्रत्येक राष्ट्र के लिए शिक्षा की भूमिका निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है। व्यापक अर्थों में शिक्षा का लक्ष्य ही जीवन की प्राप्ति हेतु, सांस्कृतिक परम्पराओं, मान्यताओं एवं मूल्यों के अनुकूलन के साथ-साथ इसका समय के सापेक्ष व्यावहारिक होना भी आवश्यक है। प्रस्तुत शोध में महर्षि अरविन्द एवं अरस्तू के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि अरविन्द व अरस्तु दोनों के ही दार्शनिक एवं शैक्षिक विचार अलग-अलग भूमि पर पनपे अवश्य हैं किन्तु फिर भी उनमें अत्यधिक समानता है।

यद्यपि भारतीय शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन अधिकांश क्रांतिकारी प्रयोगकर्ता पाश्चात्य ही रहे, इसलिये इनसे सन्धि स्थापित करने तथा आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन (विचार) को हमारी शैक्षिक परम्परा से सामाजित करने के लिए जिस बात की आवश्यकता है वह है भारतीय विचारकों के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन। इसी प्रयास में प्रस्तुत शोध में शोधार्थी द्वारा भारतीय आदर्शों एवं मूल्यों के आधुनिक रूप के प्रवर्तक एवं दार्शनिक श्री अरविन्द एवं पाश्चात्य शिक्षा जगत के आदर्शवादी विचारक अरस्तू के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है जिससे पूरब व पश्चिम की शिक्षा पद्धति में समन्वयक दिग्दर्शक हो सके।

अरविन्द घोष व अरस्तू का शिक्षा दर्शन शैक्षिक जगत के लिये अमूल्य निधि है, जिन्होंने अपने शैक्षिक विचारों में विद्यार्थी-अध्यापक सम्बन्ध, विद्यालय-अध्यापक, शिक्षण विधि, अनुशासन आदि के सम्बन्ध में जो विचार दिये हैं वे अनुपम हैं। इसलिये प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत इन दोनों विद्वानों के शैक्षिक एवं दार्शनिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है जिससे वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में उपयोगी तथ्य उजागर किये जा सकें।

समस्या का परिभाषीकरण :-

शैक्षिक विचार :- प्रस्तुत अध्ययन में शैक्षिक विचारों का तात्पर्य, शिक्षा का अर्थ, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध, विद्यालय स्वरूप, प्रशासन, अनुशासन जैसे शैक्षिक तत्वों के संदर्भ में अरविन्द तथा अरस्तू के शौक्षिक विचारों में समानता व असमानता से है।

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त तुलनात्मक अध्ययन का अर्थ भी अरविन्द व अरस्तू के शिक्षा के उपरोक्त वर्णित अवयवों के संदर्भ में समानता एवं असमानता से है।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण :- अरविन्द एवं अरस्तू दोनों ही मनीषी अपने-अपने देश-काल के महान दार्शनिक हैं। अतः अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन, प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने उनके सिद्धान्तों का अध्ययन एवम् व्याख्या की है। उनमें से कुछ मुख्य ग्रन्थ एवं शोध कार्य इस प्रकार हैं:-

बाबू[1] (१९७८) ने अपने शोध ग्रन्थ में अरविन्द के शैक्षिक व दार्शनिक सिद्धान्तों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि अरविन्द के दार्शनिक व शैक्षिक विचार आदर्शवाद पर ही आधारित हैं जो व्यक्ति में स्थित "दैवीय अस्तित्व" पर आधारित हैं। अरविन्द के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के अन्दर छिपी हुई "दैवीय प्रकृति" होती है, जिसके द्वारा व्यक्ति को सत्य, अच्छा-बुरा तथा सुन्दरता का ज्ञान होता है।

सुनीति मुकर्जी[2] ने अपने शोध ग्रन्थ में श्री अरविन्द के शिक्षा सिद्धान्त की विशेषताओं जो कि उनके अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र में प्रयोग होता है का अध्ययन किया है तथा अरविन्द के शैक्षिक विचारों को (स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ एवं महात्मा गाँधी) मनीषियों के साथ देखकर भारत की शिक्षा व्यवस्था में सुधार किन-किन

❑ असिस्टैंट प्रोफेसर, जे. एन. कौल इन्स्टीट्यूट आफ् एजुकेशन, भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

दशाओं में होना चाहिए, आदि का अध्ययन किया है।

स्निग्धा बोस[३] ने अपने शोध ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मदन मोहन मालवीय, महात्मा गाँधी तथा अरविन्द के शैक्षिक विचारों का भारतीय शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन किया, साथ ही शिक्षा का समन्वय स्वरूप, भारतीय शिक्षा पद्धति, पश्चिमी शिक्षा पद्धति, पुनर्जागरण काल में शिक्षा आदि का भी अध्ययन किया है।

एस०एस०चन्द्रा[४] ने अपने शोध ग्रन्थ में श्री अरविन्द के शैक्षिक दर्शन को योजनाबद्ध रूप से प्रस्तुत किया है। उनके दर्शन के मुख्य बिन्दुओं तथा भारतीय शिक्षा में उनके योगदान का आलोचनात्मक विश्लेषण भी किया है।

आशा देवराड़ी[५] द्वारा किये गये शोध ग्रंथ में श्री अरविन्द व जॉन डी०वी० के शैक्षिक व दार्शनिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इन्होंने भारतीय एवं पश्चिमी विचारकों का शिक्षा एवं दर्शन सम्बन्धी विचारों का तुलनात्मक अध ययन उनके शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, अध्ययन, विधियाँ, विद्यालय आदि के सम्बन्ध में किया है। इन्हीं के आधार पर इन्होंने एक शैक्षिक योजना भी प्रस्तुत की है।

'श्री अरविन्द कर्मधारा', प्रकाशक श्री अरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा। यह एक मासिक पत्रिका है, इस पत्रिका में महर्षि अरविन्द के जीवन सम्बन्धी, उनके दर्शन सम्बन्धी, शिक्षा सम्बन्धी एवं उनके द्वारा किये गये अनेकों कार्यों का विस्तृत वर्णन प्रकाशित होता है।

उपर्युक्त अध्ययनों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि अरस्तू व अरविन्द के शैक्षिक व दार्शनिक विचारों का अलग-अलग तथा अन्य शिक्षा शास्त्रियों के साथ तो तुलनात्मक अध्ययन गहन रूप से किया गया है, किन्तु अरविन्द घोष व अरस्तू के शैक्षिक व दार्शनिक विचारों के तुलनात्मक अध्ययन का अभाव रहा है। अतः प्रस्तुत अध्ययन श्री अरविन्द व अरस्तू के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों की वर्तमान भारतीय शिक्षा के परिपेक्ष्य में प्रासंगिकता को सिद्ध करने का एक लघु प्रयास है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :- बिशप वेस्टकोट के अनुसार भारत और यूनान ऐसे दो महान विचारक राष्ट्र हैं जिन्होंने विश्व के इतिहास का सृजन किया[६]। जिस प्रकार हमारे देश में ज्ञान-विज्ञान के स्रोत वेद समझे जाते हैं, उसी प्रकार पश्चिम में समस्त ज्ञान की गंगोत्री ग्रीस या यूनान हैं। प्राचीन काल में यूनानी और भारतीय अन्तिम सत्य की खोज के लिये प्रथम प्रयत्नों का दावा कर सकते हैं। ग्रीस और भारतीय चिंतन की समानताओं एवं विषमताओं दोनों के पारस्परिक प्रभाव को दिग्दर्शन कराने का प्रयास कई पुस्तकों में किया गया है। यह सत्य है कि दोनों में से प्रत्येक पर सम्पूर्ण रूप से दृष्टिपात करने पर प्रतीत होता है कि एक की सामान्य विशेषताएं या तो दूसरे में हैं ही नही या बहुत कम हैं। उदाहरणार्थ भारतीय धर्म तथा दर्शन के मध्य विद्यमान घनिष्ठ सम्बन्ध ग्रीस में केवल अपवाद स्वरूप है। दूसरी ओर यूनानी दर्शन में व्याप्त वाह्य विश्व की स्वीकृति एवं तार्किक दृष्टिकोण भारतीय दर्शन में अपेक्षाकृत कम हैं, परन्तु वैचारिक स्तर पर दोनों एक दूसरे से काफी निकट हैं। उपनिषदों के 'आत्मांन विधि' और सुकरात के 'अपने को जानो' वाक्यांशों में अद्भुत साम्य है। अतः भारतीय शिक्षा के उचित पुनर्निर्माण एवं दिशा निर्देशन के उचित आधार की खोज में दोनों स्थानों के दार्शनिकों का तुलनात्मक अध्ययन सहायक हो सकता है। अब प्रश्न उठता है कि अरविन्द और अरस्तू ही क्यों? क्योंकि दोनें ही दार्शनिक अध येता एवं प्रणेता होने के साथ-साथ महान शिक्षा शास्त्री भी थे।

राष्ट्रीय दृष्टि से :- आज राष्ट्र साम्प्रदायिकता, जातिवाद एवम् अलगाववाद की ज्वालाओं से दग्ध है। जनकल्याण एवं न्यायवादी भावना लोकतांत्रिक राष्ट्र की महती आवश्यकता हैं। कोठारी के शब्दों में ''अनेक धर्मों वाले लोक तांत्रिक राज्य के लिये यह आवश्यक है कि सभी धर्मों के सहिष्णुतापूर्ण अध्ययन को प्रोत्साहित करें ताकि उसके नागरिक एक दूसरे को और अच्छी तरह समझ सकें"।[७] महापुरूषों, विचारकों तथा मनीषियों का चिंतन किसी भी राष्ट्र को प्रगति के पथ पर आरूढ़ करने में सहायक होता है। उनके सभी कार्य जन-कल्याणार्थ होते हैं। अरविन्द तथा अरस्तू दोनें ही विचारकों में हमें आदर्शों, मान्यताओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति एक समाहारक प्रवृत्ति दिखाई देती है। ये दोनों युग पुरूष केवल दार्शनिक विचारक ही नहीं उच्चकोटि के शिक्षक भी थे।

शिक्षा शास्त्रीय दृष्टि से :- आचार्य चाणक्य ने दर्शन के महत्व को प्रकट करते हुए कहा है कि आन्वीक्षिकी (दर्शन) विद्या सब विद्याओं के लिये दीपक है। इसी से अन्य विद्याएं प्रकाशित होती हैं। यह सभी कर्मों के अनुष्ठान का उपाय बताती है और सभी धर्मों का आश्रय स्थल आन्वीक्षिकी विद्या ही है।[८] यही कारण है कि दार्शनिक विचारधाराएं शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती हैं।

इस प्रकार प्राचीन दार्शनिकों में जीवन की मूलभूत समस्याओं

के प्रति अर्न्तदृष्टि गहनतम अर्न्तदृष्टि का विशुद्ध सार है वह दार्शनिक चाहे अरविन्द हो या अरस्तू। उनका फिर से अर्थ करना और नये बोध स्तर पर प्रतिष्ठित करना शिक्षा का ध्येय और दायित्व होना चाहिए।

मानवीय दृष्टिकोण से :- डा० राधा कृष्णन के शब्दों में ''पृथ्वी को जो वरदान प्राप्त हुए थे वे आज ईर्ष्या, अहंकार, लोभ, मूढ़ता और स्वार्थ के कारण अभिशाप में परिणत हो गये हैं। आज मनुष्य का जो रूप है उसे देखकर लगता है कि वह जीने योग्य नहीं हैं। उसे या तो परिवर्तन के लिए प्रस्तुत करना चाहिए या विनाश का संकट मोल लेना चाहिए''।[६] समस्त मानव समाज को एकता के सूत्र में आबद्ध करना आधुनिक युग की महती आवश्यकता है। विश्व के लिए आज ऐसा दर्शन, विचार-पद्धति एवं शिक्षा पद्धति उपादेय है जिसके द्वारा समस्त मानव-भेद समाप्त हो और ऐक्यानुभूति हो सके। इस कार्य में अरविन्द एवम् अरस्तू के शिक्षा दर्शन से विशेष सहायता मिल सकती है।

आध्यात्मिक एवं नैतिक दृष्टि से :- वर्तमान राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा द्वारा मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा, आध्यात्मिक एवं नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा तथा विस्तृत दृष्टिकोण का विकास एक अनिवार्यता है। शिक्षा को व्यापक आधार दिये बिना यह कार्य संभव नहीं है। कोई भी शिक्षा योजना सत्य एवं मूल्य की गहन एवं एकीकरण स्थापित करने वाली परिभाषा के अभाव में अस्तित्व में नहीं रह सकती। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु मौलिक चिंतकों के अध्ययन की आवश्यकता है जो विचारों के ऐक्य को जन्म देते हैं। अतः उच्चादर्शों एवं मूल्यों की प्रतिष्ठा एवं एक सामान्य दार्शनिक पृष्ठभूमि तैयार करने में अरविन्द एवं अरस्तू के शिक्षा दर्शन के अध्ययन की महत्ता असंदिग्ध है ।

अध्ययन का उद्देश्य :- प्रस्तुत अध्ययन में निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है :-

१. श्री अरविन्द द्वारा वर्णित शिक्षा सम्बन्धी विचारों का तार्किक अध्ययन।

२. अरस्तू के शैक्षिक विचारों का विस्तृत अध्ययन करना।

३. अरविन्द एवम् अरस्तू के शिक्षा सम्बन्धी विचारों की समानता एवं असमानता को स्पष्ट करने के लिए उनके विचारों का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन विधि :- यह एक वर्णनात्मक एवं दार्शनिक शोध अध्ययन है जिसका मुख्य आधार साहित्य एवं पुस्तकालय है। शोध कार्य को अधिक प्रभावशाली एवं सार्थक बनाने के लिए स्थानीय सुविधानुसार प्राप्त अधिकतम साहित्य का उपयोग किया है। प्रस्तुत अध्याय में श्री अरविन्द एवं अरस्तू के शैक्षिक एवं दार्शनिक विचारों के अध्ययन एवं उनकी तुलना का मापदण्ड, प्रमाणिक शोधग्रंथ, अग्रणी विचारों की पुस्तकों, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सामग्री तथा कम्प्यूटर इंटरनेट में उल्लेखनीय विचारों को ही बनाया गया है।

श्री अरविन्द एवं अरस्तू के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन : भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में अरविन्द का योगदान अद्वितीय है। उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी जो विचार प्रस्तुत किये हैं वे किसी अन्य शिक्षा शास्त्री के लेखों में नहीं मिलते हैं। उन्होंने शिक्षा को जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया बताया और कहा कि शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपने अहम् से उठकर राष्ट्र निर्माण का कार्य करता है। इसी प्रकार यदि हम अरस्तू के शैक्षिक विचारों का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि उन्होंने अपने शिक्षा सम्बन्धी सभी विचार सामाजिक क्षेत्र की परिस्थितियों में रखकर ही प्रतिपादित किये हैं।

महर्षि अरविन्द के अनुसार ''एकमात्र सच्ची शिक्षा वह होगी जो व्यक्ति एवं राष्ट्र के मन और शरीर में आत्मा के वास्तविक कार्य के लिए उपकरण हो। यही वह सिद्धान्त होना चाहिए जिस पर हम निर्माण करें, यह एक ऐसी शिक्षा होनी चाहिए जो व्यक्ति के लिए अन्तरात्मा उसकी शक्तियों और उनकी क्षमताओं के विकास को ही व्यक्ति का केन्द्रीय आदर्श बना दें।''[९०]

इसी समानता को लेते हुए अरस्तू द्वारा दी गयी शिक्षा की परिभाषा कुछ इस प्रकार है :- ''शिक्षा एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होता है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति की निहित पाश्विक वृत्तियों का शुद्धिकरण एवं परिमार्जन होता है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की आत्मा को पवित्र बनाया जा सकता है। वह राज्य में अपने अधिकारों व कर्तव्य को जान पाता है''।[९१]

महर्षि अरविन्द के अनुसार शिक्षा का अर्थ ''बालक की शिक्षा को उसकी प्रकृति में जो कुछ सर्वोत्तम, सर्वाधिक अन्तरंग और जीवनपूर्ण है उसको व्यक्त करना होना चाहिए, मनुष्य की क्रिया और विकास जिस साँचे में ढलने चाहिए, वह उसके अंतरंग और शक्ति का साँचा है। उसे नयी वस्तुएं अवश्य प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु वह उनको सर्वोत्तम रूप से और सबसे अधिक प्राणमय रूप में स्वयं अपने विकास, प्रकार और अंतरंग शक्ति के आधार पर प्राप्त

होगा''।[१२]

१. सच्ची शिक्षा एक आत्म शिक्षा है।
२. शिक्षा मानव मन और आत्मा की शक्तियों का निर्माण तथा विकास है।[१३]
३. शिक्षा पद्धति में ब्रह्मचर्य पर बल दिया है।
४. शिक्षा में व्यक्तित्व की अहम भूमिका है।
५. आध्यात्मिक शिक्षा अरविन्द की शिक्षा योजना का सर्वोच्च पहलू है।
६. शिक्षा को अतीत से न जोड़कर वर्तमान व भविष्य से जोड़ा है।
७. शिक्षा ध्यान में रखकर राष्ट्रीय भाषा के विकास पर बल दिया है।

अरस्तू के अनुसार शिक्षा का अर्थ

१. शिक्षा द्वारा मानव को सुख की प्राप्ति होती है।
२. शिक्षा द्वारा मानव में अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होता है।
३. शिक्षा आध्यात्मिक उन्नति हेतु आत्मिक गुणों के विकास का मार्ग है।
४. शिक्षा द्वारा व्यक्ति में निहित पाश्विक वृत्तियों का शुद्धिकरण एवं परिमार्जन होता है।
५. शिक्षा द्वारा व्यक्ति की आत्मा को पवित्र बनाया जाता है।

निष्कर्ष :- श्री अरविन्द ने जीवन, जगत एवं ब्रह्म को एक दूसरे में समाहित माना है। उनके अनुसार आध्यात्मिक उत्थान ही आत्मानुभूति प्राप्त करने का साधन है। इसी प्रकार अरस्तू ईश्वर व जगत को सत्य मानते हैं और ईश्वर प्राप्ति मनुष्य के लिए आवश्यक है।

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का अर्थ व्यक्ति के आन्तरिक विकास, ब्रह्मचर्य एवं मानसिक विकास से है। वहीं अरस्तू के अनुसार शिक्षा का अर्थ आध्यात्मिक उन्नति हेतु आत्मिक गुणों के विकास का मार्ग है।

शिक्षा के उद्देश्य :- महर्षि अरविन्द के अनुसार

१. बालकों को इन्द्रियों का सही ढंग से उपयोग करना सिखाए।
२. मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण।[१४]
३. शरीर को सुन्दर एवं शक्तिशाली बनाना।[१५]
४. बालक में नैतिकता एवं धार्मिक भावना का विकास।[१६]
५. बालक में धार्मिक गुणों का समावेश करना।

अरस्तू के अनुसार

१. शिक्षा का लक्ष्य है मानव को सद्गुण और आनन्द की प्राप्ति कराना, उत्तम मनुष्यों और नागरिकों का निर्माण करना।[१७]
२. शिक्षा सम्पत्ति, स्वास्थ्य और आत्मिक सुख की उपलब्धि का साधन है।
३. यह सामाजिक व नागरिक जीवन में दक्षता का मार्ग है।
४. शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में नैतिकता एवं सौंदर्यानुभूति के गुणों को जागृत किया जा सकता है।
५. समन्वित जीवन का निर्माण शिक्षा द्वारा किया जा सकता है।

निष्कर्ष :- श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य ज्ञानेन्द्रियों, मानसिक शक्तियों, तार्किक शक्तियों का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा और नैतिकता एवं धार्मिक भावना का विकास करना होना चाहिए वहीं अरस्तू की शिक्षा का उद्देश्य है कि व्यक्ति की भावनात्मक शक्तियों को इतना जागृत करना माना है जिससे बुद्धि तथा विवेक का अवसर मिल सके।

२. पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचारः- महर्षि अरविन्द का झुकाव यद्यपि शिक्षा में भी आध्यात्मिकता की ओर था यद्यपि आध्यात्मिक विषयों को ही इन्होंने श्रेष्ठ समझा, फिर भी साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा भौतिक विषयों के महत्व को इन्होंने स्वीकारा। पाठ्यक्रम में इन्होंने विदेशी भाषा को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया। अरविन्द के अनुसार शिक्षक को सबसे पहले बालक को उसके आस-पास के जगत से परिचित करवाना चाहिए। बालक की मानसिक शक्तियों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए।[१८] महर्षि अरविन्द के अनुसार पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय शिक्षा में स्वाभाविकता नष्ट न हो जाए इस बात को ध्यान में रखना चाहिए। उन्होंने पाँच-छः विषयों की अपेक्षा दो-तीन विषयों की शिक्षा देना अच्छा माना है।

अरस्तू के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण कुछ इस प्रकार किया गया है :

वे अपनी शिक्षा को तीन कालों में विभक्त करते हैं :-

प्रथम काल - जन्म से ७ वर्ष तक

अरस्तू इस काल में बच्चों पर पढ़ाई का बोझ डालने के लिये मना करते हैं। इस अवस्था में अरस्तू बालक के भोजन, अंग संचालन और दण्ड का अभ्यासी बनाने पर बल देते हैं।

द्वितीय काल - ८ से १४ वर्ष तक

शिक्षा के इस द्वितीय सोपान में अरस्तू ने शरीर गठन पर विशेष ध्यान देने के लिए बल दिया है। उनका विचार है कि इस आयु में किशारों के नैतिक विकास की ओर ध्यान देना चाहिए और अध्ययन विषयों में पढ़ना, लिखना, ड्राइंग, चित्रकला, संगीत आदि की शिक्षा देनी चाहिए।

तीसरा काल - १५ से २१ वर्ष तक

अरस्तू का मानना है कि इस अवधि में छात्रों के मस्तिष्क के विकास की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और अध्ययन विषयों में पढ़ना, लिखना, ड्राइंग, चित्रकला, संगीत, अंकगणित, रेखागणित आदि आवश्यक होना चाहिए।[१६]

निष्कर्ष :- श्री अरविन्द ने पाठ्यक्रम में इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान विषय को स्थान दिया है, उसी प्रकार अरस्तूने संगीत, विज्ञान, गणित, चित्रकला आदि को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की बात कही।

३. शिक्षण विधि सम्बन्धी विचारः- महर्षि अरविन्द ने बालक को सिखाने के लिए खेल विधि को महत्वपूर्ण माना है। अरविन्द शिक्षण विधियों में अनुकरण विधि को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। श्री अरविन्द इन्द्रियों को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए अभ्यास पर बल देते हैं क्योकि बालक इसी के माध्यम से कोई भी जानकारी आसानी से ग्रहण कर लेता है। श्री अरविन्द अवलोकन व निरीक्षण विधि द्वारा बालक को सिखाने पर बल देते हैं।[२०]

अरस्तू बालक को अनुभव के आधार पर सिखलाने पर बल देते हैं। अरस्तू ने शिक्षा पद्धति के वैज्ञानिक स्वरूप को प्रस्तुत किया, साथ ही शिक्षण हेतु अनुभव विधि, तर्क विधि तथा वाद-विवाद विधि एवं प्रश्नोत्तर विधि का समर्थन किया। अरस्तू ने सबसे अधिक आगमन व निगमन विधि पर बल दिया।[२१]

निष्कर्ष :- श्री अरविन्द ने पाठ्यक्रम के लिए अवलोकन, निरीक्षण, अनुकरण व प्रयोग विधि के प्रयोग पर बल दिया है जिससे बालक का बहुमुखी विकास हो सके। उसी प्रकार अरस्तू भी पाठ्यक्रम में शारीरिक विकास व मानसिक विकास हेतु अनेक विषयों को सम्मिलित करने की सिफारिश करते हैं, जैसे - आगमन - निगमन विधि, वाद-विवाद विधि।

४. अनुशासन सम्बन्धी विचार :- महर्षि अरविन्द शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाओं पर नियंत्रण को स्वीकार करते है। अरविन्द इस बात में विश्वास करते हैं कि शिक्षक अनुशासनहीनता के लिए बालक को दण्ड न दें बल्कि स्वयं ऐसा आदर्श प्रस्तुत करें कि बालक भी उसका अनुकरण करें। महर्षि अरविन्द अनुशासन को आन्तरिक मानते हैं। उनके अनुसार यह बालकों में स्वयं विकसित होता है।

अरस्तू शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक अनुशासन का समर्थक है। अरस्तू ने अनुशासन के लिए शरीर एवं मन दोनों के नियंत्रण पर बल दिया । अरस्तू ने इसी कारण पाठ्यक्रम में खेलकूद, व्यायाम आदि पर तथा मानसिक नियंत्रण हेतु संगीत एवं गणित का समर्थन किया।

निष्कर्ष :- महर्षि अरविन्द प्रभावात्मक अनुशासन में विश्वास रखते हैं, उनके अनुसार अध्यापक को छात्रों के समक्ष अपने उच्च आदर्श प्रस्तुत करने चाहिए। वहीं अरस्तू भी प्रभावात्मक अनुशासन पर बल देते हैं। दण्ड का वे विरोध करते हैं।

५. शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धी विचारः- महर्षि अरविन्द बालक को शिक्षा का केन्द्र मानते हैं। उनके अनुसार बालक का विकास अपनी क्षमताओं के अनुरूप होता है। वह बालक को शिक्षक के विचारों का दास नहीं बना देना चाहते थे। उनका मानना था कि बालक को शिक्षा पर इतना आश्रित नही कर देना चाहिए कि जिसे जब चाहो जैसा घुमा दो। आदर्शवादी होने के बावजूद अरविन्द के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक का स्थान पथ-प्रदर्शक व सहायक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उनके अनुसार एक अध्यापक न तो बच्चे को ज्ञान देता है और न ही ज्ञान को विकसित करता है अपितु वह बच्चों को इस बात में सहायता करता है कि वे स्वयं ज्ञान प्राप्त करें व अपने अंदर के ज्ञान को विकसित करें।[२२]

अरस्तू भी बालक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। वाद-विवाद शिक्षण विधि इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि छात्रों की महत्ता को स्वीकार किया गया है। अध्यापक भी शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वह अपने अनुभव द्वारा बच्चों को बहुत अधिक सिखा सकता है। शिक्षक बालक के पथ प्रदर्शक का कार्य करेगा तथा उसे उचित समय पर उचित निर्देशन देगा। आदर्शवादी होने के पश्चात भी अरस्तू ने शिक्षक को सर्वोच्च स्थान सम्मान की दृष्टि से तो दिया है किन्तु कार्य के लिए उसे एक निर्देशक के रूप में ही माना है।

निष्कर्ष :- शिक्षक-शिक्षार्थी के सम्बन्ध में अरविन्द ने कहा है कि शिक्षक को केवल शिक्षार्थी का मार्गदर्शक होना चाहिए और बालक का स्थान शिक्षा में सर्वोपरि माना है। अरस्तू भी बालक के अनुसार ही शिक्षा देने की बात करते हैं, अरस्तू भी मानते हैं कि शिक्षक को अपने विचारों को विद्यार्थी पर नहीं लादना चाहिए।

६. शिक्षा का माध्यम :- महर्षि अरविन्द ने शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा को ही माना है।[२३] किन्तु विदेशी भाषा का भी बहिष्कार नहीं किया। उनका मानना था कि बालक को उन सभी भाषाओं की शिक्षा दी जाये जिनके द्वारा बालक का उचित प्रकार से शैक्षिक विकास हो सके तथा जिसके द्वारा राष्ट्र भी अपना पूर्ण विकास कर सके।

अरस्तू ने शिक्षा का माध्यम सम्बन्धी कोई भी विचार नहीं दिया है। उन्होंने न तो मातृभाषा और न ही अन्य किसी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने पर बल दिया है।

७. विद्यालय सम्बन्धी विचार :- महर्षि अरविन्द ने सन् १९१० ई० में पाण्डिचेरी में एक आश्रम की स्थापना की। उन्होंने इसे विद्यालय का रूप नहीं दिया। फिर सन् १९४९ में श्री अरविन्द द्वारा स्थापित ''आश्रम स्कूल" की स्थापना की गई जिसे १९५२ में ''श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र" के रूप में स्थापित किया गया जहाँ बालकों को विषय चुनने की स्वतंत्रता है। बालकों का सर्वांगीण विकास करना इनके विद्यालय का परम् उद्देश्य है। महर्षि अरविन्द के अनुसार विद्यालय ऐसा हो जो बालकों के अन्दर भौतिक व आध्यात्मिक गुणों का विकास कर सकें।[२४]

अरस्तू अरविन्द की तरह ही विद्यालय की महत्ता को समझते थे। उन्होंने भी ३५५ई०पू० में एथेन्स में विद्यापीठ 'लाथलियम' की स्थापना की। उनके नेतृत्व में 'लाथलियम' ने काफी प्रतिष्ठा अर्जित की। उनका कहना था कि छात्रों को समस्त विषयों की शिक्षा एक ही विद्यालय मे देनी चाहिए।

महर्षि अरविन्द तथा अरस्तू के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों के तुलनात्मक, उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश से निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दोनों ही विद्वानों के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचार अलग-अलग पृष्ठभूमि में पनपे अवश्य हैं किन्तु फिर भी उनमें अत्यधिक समानता है।

संदर्भ

१. बाबू,ए.एसः 'श्री अरविन्द के शैक्षिक विचारों का अध्ययन', रिसर्च एबस्ट्रैक्टस २००६
२. मुकर्जी,सुनीति : 'श्री अरविन्द का शिक्षा दर्शन, एक आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक मूल्यांकन', पी.एच.डी., के.एन. गवर्नमेन्ट पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, ज्ञानपुर, वाराणसी
३. बोस,स्निग्धा 'विवेकानन्द एवं अरविन्द का शिक्षा दर्शन', एक समन्वयात्मक अध्ययन, आगरा वि०वि० की पीएच०डी० हेतु प्रस्तुत
४. चन्द्रा, एस.एस 'अरविन्द का शैक्षिक दर्शन', अप्रकाशित एम०एड० शोध ग्रन्थ, कुमाऊँ वि०वि०, १९९७
५. देवराड़ी आशा, 'श्री अरविन्द और जॉन डी.वी. के दार्शनिक व शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन', अप्रकाशित एम.एड. शोध प्रबन्ध, कुमाऊँ वि०वि०, २००१
६. ब्रटन,पालः 'द क्वेस्ट ऑफ दी ओवर लीफ', बी-१, पब्लिकेशन्स, दिल्ली १९७५
७. कोठारी,डी.एस. 'शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (१९६४-६६)', शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, प्रथम अध्याय, पृ० २४
८. कौटिल्यः अर्थशास्त्र,११२, उद्धृत आर.एस. पाण्डेय 'शिक्षा दर्शन', विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, पृ. ८
९. राधा कृष्णन,सर्वपल्लीः प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली १९६७, पृ० ६२
१०. http://www.ajna.com/great-thinkers/sri-aurobindo/quotes.php
११. http://www.brainyquote.com/.../aristotle.html
१२. श्री अरविन्द 'एसेज ऑन द गीता',१९४८, पृ० ३१९
१३. शर्मा, राम सिंह 'शिक्षा की दार्शनिक अवधारणा', संजय पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ० ३०४
१४. सक्सेना, राम स्वरूप 'पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा दार्शनिक', लायल बुक डिपो, मेरठ, पृ० २९२
१५. वही पृ० २९२
१६. वही पृ० २९२
१७. सक्सेना,राम स्वरूप, पूर्वोकत, पृ० ३७
१८. पाल एम, 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत', साहित्य प्रकाशन, आगरा २०११, पृ० १३२
१९. सक्सेना,राम स्वरूप, पूर्वोक्त, पृ० ३८
२०. गुप्ता एम.एल. 'श्री अरविन्द एन एजुकेशनल थिंकर', अनमोल पब्लिकेशन्स
२१. चौबे, एस.पी.एवं अखिलेश चौबे, 'आइडियल आफ दी ग्रेट वेस्टर्न एजुकेटर' नीलकमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २००३, पृ० ५३
२२. शर्मा, राम सिंह, पूर्वोक्त, पृ० ३०९
२३. सक्सेना,राम स्वरूप, पूर्वोक्त, पृ० २९४
२४. पाल, एम. पूर्वोक्त पृ० १३३

सामाजिक परिवर्तन और भ्रष्टाचार

❑ डॉ. कनक लता

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत एवं अटल नियम है। मानव समाज भी उसी प्रकृति का अंश होने के कारण परिवर्त्तनशील है। सामाजिक परिवर्तन एक अवश्यम्भावी तथ्य है। इसकी निश्चितता को स्पष्ट करते हुए डेविस कहते हैं कि हम स्थायित्व एवं सुरक्षा के लिए निरंतर प्रयत्नशील हो सकते हैं। समाज के स्थायित्व का भ्रम चारों ओर फैलाया जा सकता है। निश्चयात्मक के प्रति खोज निरंतर बनी रह सकती है। और विश्व अनंत है इस विषय में हमारा विश्वास दृढ़ हो सकता है लेकिन यह तथ्य हमेशा विद्यमान रहने वाला है कि विश्व के अन्य तत्वों की तरह समाज भी अपरिहार्य रूप से और बिना किसी छूट के सदैव परिवतर्तित होता रहता है।[1]

भ्रष्टाचार एक विश्वव्यापी तथ्य है। यह अनंत समय से प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में पाया जाता है। फ्रांस में १५ वीं शताब्दी में इंग्लैंड को भ्रष्टाचार का गढ़ढा कहा जाता था। १६ वीं शताब्दी में भी भ्रष्टाचार इतना अधिक था कि गिब्बन ने इसे संवैधानिक स्वतंत्रता का सबसे अचूक लक्षण कहा था। भारत में कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में राज्य कोष के सरकारी कर्मचारियों द्वारा गबन किए जाने का संदर्भ दिया है। अब तो स्थिति ऐसी हो गई कि भ्रष्टाचार एक सामान्य सी घटना है। जब तक भ्रष्टाचार पर नैतिक, कानूनी और सामाजिक प्रतिबंध नहीं लगते तब तक इसको समाप्त करने की कोई संभावना नहीं है। प्रस्तुत लेख देश में भ्रष्टाचार की स्थिति, उसके कारणों तथा इसके निराकरण हेतु किये गये प्रयासों के विश्लेषण पर आधारित है।

विकास हेतु परिवर्तन आवश्यक है। किंतु सभी प्रकार के परिवर्तन को विकास नहीं कहा जा सकता है। जैसे-जैसे समाजों में जटिलता बढ़ती है और सामाजिक परिवर्तन की गति तेज होती जाती है। वैसे-वैसे सामाजिक सामंजस्य के दबाव और तनाव अधिकाधिक गहन होते जाते हैं। यदि इनसे छुटकारा प्राप्त नहीं किया जाता है तो सामाजिक विघटन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है।

सामाजिक विघटन का एक स्वरूप है भ्रष्टाचार। सार्वजनिक जीवन में स्वीकृत मूल्यों के विरूद्ध आचरण को भ्रष्ट आचरण समझा जाता है। आम जन-जीवन में इसे आर्थिक अपराधों से जोड़ा जाता है। भारत में भ्रष्टाचार का इतिहास बहुत पुराना है। भारत की आजादी के पूर्व अंग्रेजों ने सुविधाएं प्राप्त करने के लिए भारत के संपन्न लोगों को सुविधा स्वरूप धन देना प्रारंभ किया। राजे-रजवाड़े और साहूकारों को धन देकर उनसे वे सब प्राप्त कर लेते थे, जो उन्हें चाहिए था। अंग्रेज भारत के रईसों को धन देकर अपने ही देश के साथ गद्दारी करने के लिए कहा करते थे और ये रईस ऐसा ही करते थे यह भ्रष्टाचार वहीं से प्रारंभ हुआ और तब से आज तक लगातार चलते हुए फल-फूल रहा है।

भ्रष्टाचार भारतीय समाज की सर्वकालिक तथा सर्वव्यापी समस्या है। प्रसिद्ध विद्वान कौटिल्य ने अपने ग्रंथ राजनितिक अर्थशास्त्र में लिखा है कि जिस प्रकार जिहवा पर रखे हुए शहद का स्वाद ना लेना असंभव है उसी प्रकार शासकीय अधिकारी के लिए राज्य के राजस्व के एक अंश का भक्षण ना करना असंभव है।[2]

१९९१ में भारतीय अर्थव्यवस्था को उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की विश्वव्यापी राजनीति एवं अर्थशास्त्र से जोड़ा गया। पहले भ्रष्टाचार के लिए परमिट, लाईसेंस राज को दोष दिया जाता था पर जब से देश में वैश्वीकरण, निजीकरण, उदारीकरण, विदेशीकरण, बाजारीकरण एवं विनिमय की नीतियाँ आई हैं। तब से घोटालों की बाढ़ आ गई है। इन्हीं के साथ बाजारवाद, भोगवाद, विलासिता तथा उपभोगता संस्कृति का भी जबरदस्त हमला शुरू हुआ है।

भारत में भ्रष्टाचार की जड़ें गहरी हैं। जिस तेजी से अनेक नेताओं के नाम भ्रष्टाचार से जुड़ने लगे हैं। लगता है, कि इक्कसवी शताब्दी में भी भ्रष्टाचार को बढ़ने से रोकना असंभव होगा। बहुदा हम राज्य और केंद्र के उच्च राजनितिज्ञों को यह कहते हुए सुनते हैं, कि हमें भ्रष्टाचार के विरूद्ध युद्ध करना है। भ्रष्टाचार की बुराई से लड़ना है। भ्रष्टाचार से हम कोई समझौता नहीं करेंगे। किसी भी भ्रष्टाचारी व्यक्ति को माफ नहीं किया जाएगा। चाहे वह कितना ऊंचा क्यों न हो। फिर भी यह सर्वविदित है, कि हमारा देश भ्रष्टाचार में कितना डूबता जा रहा है।[3]

भ्रष्टाचार पर चर्चा करने से पहले भ्रष्टाचार किसे कहते हैं यह जान लेना आवश्यक है। भ्रष्टाचार शब्द का प्रयोग बहुत विस्तृत अर्थों में किया जाता है। इनमें राजनीतिक दलों द्वारा

❑ व्याख्याता, समाजशास्त्र विभाग, बेथेसडा महिला महाविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

किया गया गोलमाल व दल-बदल उच्च अधिकारियों द्वारा की गई अनियमितता पुलिस द्वारा घूस लेने का कार्य, पढ़े लिखे व्यक्तियों द्वारा कानून तोड़ना आदि सम्मिलित है। कभी-कभी भ्रष्टाचार शब्द के स्थान पर अनुचित लाभ का प्रयोग किया जाता है। इलियट तथा मैरिल के अनुसार किसी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लाभ को प्राप्त करने के लिए जानबूझ कर कर्तव्य का पालन ना करना भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार सदैव किसी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट लाभ के लिए कानून तथा समाज के विरोध में किया जाने वाला कार्य है।[४]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षो में भारत ने आर्थिक विकास के मामले में जितनी भी उपलब्धियॉ हासिल की हैं वे इससे भी कहीं अधिक ऊँची हो सकती थीं, यदि इस देश में भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी अधिक गहरी नहीं होतीं। जिस गति से आर्थिक विकास में सुधार हुआ है उस तीव्रता से उसका लाभ समाज के सबसे निचले पायदान पर बैठे वर्ग तक नहीं पहुंच सका हैं। सार्वजनिक परियोजनाओं, योजनाओं तथा कार्यक्रमों में व्याप्त भ्रष्टाचार से सार्वजनिक धन का एक बड़ा भाग राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों और माफिया सरगनाओं के कुत्सित गठजोड़ के हिस्से में चला गया है। भारत में ऐसे राजनीतिज्ञों की संख्या अब ऊंगलियों पर गिनने लायक रह गई है, जिन पर अवैध तरीके से धन कमाने के आरोप नहीं हैं अन्यथा पंचायत स्तर से लेकर केन्द्रीय सरकार और विधायिका के स्तर तक लगभग प्रत्येक राजनीतिज्ञ के पास उसके ज्ञात स्रोतों से अधिक सम्पत्ति है। लगभग यही हाल विकासखण्ड कार्यालय में कार्यरत साधारण लिपिक से लेकर शीर्ष पर बैठे नौकरशाहों के भ्रष्टाचार में लिप्त होने के समाचार आते हैं, समाचार पत्रों और दूरदर्शन पर सुर्खियॉ बटोरते हैं और फिर सब कुछ शांत हो जाता है।[५]

भ्रष्टाचार एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : भ्रष्टाचार एक विश्वव्यापी तथ्य है। यह अनंत समय से प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में पाया जाता है। फ्रांस में १५वीं शताब्दी में इग्लैंड को भ्रष्टाचार का गड्ढा कहा जाता था। १९वीं शताब्दी में भी ब्रिटेन में भ्रष्टाचार इतना अधिक था कि गिब्बन ने इसे संवैधानिक स्वतंत्रता का सबसे अचूक लक्षण कहा है, भारत में कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में राज्य कोष के सरकारी कर्मचारी द्वारा गबन किए जाने का सन्दर्भ दिया है। उसने सरकारी कर्मचारी द्वारा अपनाए जाने वाले लगभग ५० प्रकार के गबन और भ्रष्ट तरीकों का वर्णन किया हैं। (१९६१ चुनावों के बाद नवोदित राजनीतिक अभिजात वर्ग ने अपने ईमानदार होने के विषय में जनता का विश्वास खो दिया)। स्वतंत्र भारत में सबसे पहले १९४९ में विंध्य प्रदेश के कांग्रेसी नेता व तत्कालीन उद्योग मंत्री रावशिव बहादुर सिंह को २५ हजार रिश्वत लेने के लिए जेल की सजा दी गई थी। १९६२ में कृष्णा मेनन पर २००० जीपों की खरीद के मामले में घूस खाने का आरोप था। इंदिरा गॉधी के शासनकाल में २० करोड़ रूपये के क्युओ आयल कम्पनी के साथ का विवादास्पाद सौदा, ६० लाख रूपये का नागरवाला मामला, मारूति उद्योग घोटाला, एच. बी. डबल्यू. पनडुब्बी का घोटाला उद्घाटित थे।[६]

ट्रांसपैरेंसी इण्टरनेशनल का आंकलनः अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जर्मनी स्थित एक गैर सरकारी संगठन ट्रांसपैरेंसी इण्टरनेशनल सार्वजनिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के आधार पर विभिन्न देशों को ०-१० के पैमाने पर सूचीबद्ध करता है यह संगठन वित्तीय पत्रकारों के तथा उन देशों से व्यवहार करने वाले व्यापारियों के दृष्टिकोणों के अनुसार उनके लेन देन में उस देश को ईमानदार या भ्रष्टाचार की श्रेणी प्रदान करके मूल्यांकन करता है। इसके द्वारा जारी भ्रष्टाचार बोध सूचकांक (करप्शन परसेप्शन इण्डेक्स) के अनुसार सन् २००९ में ३.४ अंको के साथ भारत ८४वें स्थान पर है। इसका अर्थ यह हुआ कि विश्व में ८३ देश ऐसे हैं जहॉ सार्वजनिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार भारत की तुलना में कम हैं।[७]

स्वतंत्रयोत्तर भारत की चुनौतियों को स्वीकार करने एवं विकास के लक्ष्य को हासिल करने के निमित्त समाजवाद पंचवर्षीय योजनाएं सामुदायिक विकास कार्यक्रप पंचायती राज जैसे समाजोत्थानिक लक्ष्यपूर्ण कार्यक्रम, राजनीतिक नेतृत्व द्वारा लोक प्रशासन को सौंपे गए इनके क्रियान्वयन के लिए लोकसेवकों को असीमित अधिकार प्रदान किए गए। उचित नियंत्रण एवं पारदर्शी व्यवस्था के अभाव में लोक प्रशासकों द्वारा इन अधिकारों व सत्ता का उपयोग राज्य व समाज के हित में न कर निजी हित में किया गया। यहीं से भ्रष्टाचार के पौधे ने भारतीय प्रशासन में वटवृक्ष का रूप धारण किया। १७ वर्ष तक देश की राजनीति में एक ही दल के वर्चस्व के चलते केन्द्र एवं राज्यों में मंत्रीगणों सांसदों विधायकों का एक वर्ग इन भ्रष्ट लोक सेवकों से मिल गया। जो हमारे निर्वाचित जनप्रतिनिधि नैतिकता एवं शुद्धता के संरक्षक थे, वे स्वयं ही भ्रष्टाचार एवं प्रशासनिक पक्षपात के दल-दल में फँस गए। एक समय था, जब रिश्वत गलत कार्यो को कराने के लिए दी जाती थी लेकिन अब सही कार्य

को सही समय पर कराने के लिए दी जाती है।[८]

केन्द्र सरकार में कम से कम चार ऐसे मंत्रालय हैं जो धन अर्जन के लिए सोने की खान माने जाते हैं ये है- रक्षा, पेट्रोलियम, उर्जा और संचार मंत्रालय। रक्षा मंत्रालय प्रतिवर्ष रक्षा संबंधी वस्तुओं की खरीद पर लगभग ३०००० से ४०००० करोड़ रूपये के बीच खर्च करता है और यह कहा जाता है कि अस्त्र शस्त्र गोला बारूद अतिरिक्त कल पुर्जे और मिराज विमानों की खरीद के लिए १५ से ४० प्रतिशत दलाली आम चलन है। चार अन्य विभाग जहॉ भ्रष्टाचार व्याप्त है वे हैं पी. डब्लू. डी (लोक निर्माण विभाग) पुलिस चुंगी और राजस्व। यह कहा जाता है कि किसी प्रोजेक्ट के लिए स्वीकृत समस्त राशि में से लगभग ७० प्रतिशत कार्य पर खर्च किया जाता है २०प्रतिशत ठेकेदार का लाभ और १०प्रतिशत विभिन्न अफसरों के जेब में चला जाता है।[९]

भ्रष्टाचार न केवल उच्च स्तर पर व्याप्त हैं बल्कि निम्न स्तर तक भी फैला हुआ है कई संस्थानों में कनिष्ठ अधिकारियों की दलाली की निश्चित राशि बंधी हुई है। उदाहरणार्थ इंजीनियरिंग विभाग में एक जूनियर इंजीनियर सौदे की पूरी रकम का ५प्रतिशत सहायक अभियंता ३ प्रतिशत और अधिशाषी अभियंता २ प्रतिशत मांगता है। आयकर विभाग में दर भिन्न है निरीक्षक १००००रू तथा कमिश्नर के ५ लाख रूपये या अधिक बंधे हैं जो कर की राशि पर निर्भर करता है। पुलिस विभाग में दर भिन्न है कांस्टेबल १०रू से २०००रू तक उपनिरीक्षक और निरीक्षक के २०००रू से १००००रू तक उप अधीक्षक और पुलिस अधीक्षक१००००रू से २००००रू या इससे भी अधिक हैं। सरकारी कार्यालयों में किसी की अनुमति प्रदान किए जाने के बाद भी जब तक सम्पूर्ण स्वीकृत धनराशि का १ प्रतिशत या २ प्रतिशत रिश्वत न दिया जाए तब तक सम्बन्धित लिपिक स्वीकृति पत्र तक टाइप नहीं करेगा या डाक में नहीं डालेगा। निम्नतम स्तर पर चपरासी भी अपने साहब से मिलने देने के लिए आगन्तुक से १०रू या २०रू झाड़ लेता है। सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार इतना व्याप्त है कि एक प्रधानमंत्री को भी एक सार्वजनिक सभा में कहना पड़ा कि सार्वजनिक कार्यक्रमों के लिए आवंटित धन राशि १००रू में से जनता के लाभ में केवल २०रू ही लगते हैं। इसमें आश्चर्य नहीं कि जनता की उदासीनता के कारण ही देश में भ्रष्टाचार इतनी विकट स्थिति में पहुंचा हैं।[१०]

तालिका-१

भारत में रिश्वत की मांग की प्रकृति[११]

कार्य का प्रकार	रिश्वत लेने के मामलों का प्रतिशत
सही एवं वैध कार्य समय से करना	५१.०
व्यवसायिक हितों का संरक्षण	१६.०
सेवाएँ प्रदान करने के लिए रिश्वत लेना	१०.०
नवीन व्यवसाय प्रारंभ करने के लिए रिश्वत लेना	५०.०
अन्य सरकारी अधिकारियों पर दबाव डालने के लिए रिश्वत लेना	३.०
अनुचित पक्षपात करने के बदले रिश्वत लेना	४.०
अन्य मामले	११.०
कुल मामले	१००.००

हाल ही के वर्षों में जिस प्रकार बोफोर्स घोटाला चारा घोटाला, प्रतिभूति घोटाला, हवाला काण्ड, ताबूत काण्ड, तहलका काण्ड तथा कुछ राजनेताओं व प्रशासकों के घर छापों के दौरान मिली अथाह सम्पत्ति व अभी हाल में हमारे माननीय सांसदो को प्रश्न पूछने के बदले रिश्वत मॉगते टी. वी कैमरे में कैद किया जाना आदि ऐसे भारतीय राजनीति एवं प्रशासन के दृष्टांत हैं जो इस ओर इंगित करते हैं कि भ्रष्टाचार उन्मूलन की दिशा में शासकीय स्तर पर किए गए उपयुक्त प्रयास नाकाम सिद्ध हुए है। और भ्रष्टाचार रूपी राक्षस सुरसा के मुँह की तरह दिन ब दिन बढ़ता जा रहा हैं।[१२]

भ्रष्टाचार के कारण : किसी भी अन्य समस्या की तरह भ्रष्टाचार के भी अनेक कारण होते हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख हैं।

१. **व्यक्तिगत कारण-** एक लोकोक्ति हैं ''बुभुक्षित किं न करोति पापम्'' अर्थात भूखा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं करता? अपनी बहनों बेटियों के लिए दहेज के प्रबन्ध या नौकरी ढूंढने पर भी काम न मिलना या ऐसे काम मिलना जिसमें दो समय का पर्याप्त भोजन भी न मिले व्यक्ति को भ्रष्टाचार के मार्ग पर आगे बढ़ा सकता है। आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में पीड़ित व्यक्ति भ्रष्टाचार के हाथों बड़ी सरलता से बिक सकता है।

२. **लाइसेंस, परमिट, कोटा व कण्ट्रोल तथा जटिल कर प्रणाली पर आधारित आर्थिक व्यवस्था-** यह सच है कि विकासशील देशों में साधनों की कमी है जिसके कारण कुछ वस्तुओं के नियंत्रण के लिए लाईसेंस व कोटा सिस्टम होता है परंतु जहां कहीं भी ऐसी व्यवस्था

होती है वहाँ भ्रष्टाचार पनपने के अवसर अधिक होते हैं। साथ ही भारत में कर प्रणाली बड़ी जटिल व भारी हैं। व्यापारियों का तो यह कहना है कि यदि वे सभी कर दें और नंबर दो का व्यवसाय न करें तो भूखों मरने लगेंगें।

३. **दोषपूर्ण कानून व्यवस्था-** भारत में कानून इतने जटिल और कानूनी प्रक्रिया इतनी लंबी औपचारिक व दुरूह है कि सामान्य व्यक्ति के लिए उसे समझ पाना जटिल है। पढ़ा लिखा व्यक्ति भी कानूनी औपचारिकता के झंझटों व परेशानी से बचने के लिए भ्रष्ट तरीकों का सहारा लेने को प्रेरित हो जाता है। कानूनों का खोखलापन भी भ्रष्टाचार का कारण हैं।

४. **सत्ता की राजनीति-** सत्ता की राजनीति में नैतिक आर्दशों और राष्ट्रीय हितों के लिए कम ही स्थान रह पाता है। सत्ता प्राप्त करने के लिए खुलकर धन व अन्य हथकड़ों का प्रयोग होता है। जब राजनेता ही भ्रष्ट हैं तो सामाजिक जीवन कैसे स्वच्छ रह सकता है।

५. **भौतिकवादी आदर्श-** भौतिकवादी आदर्शो ने भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। भौतिकवादी धन संपत्ति व अन्य भोग विलास की चीजों के महत्व को अत्यधिक महत्व प्रदान करता है। अतः अधिकाधिक धन चाहिए यही आधुनिक मानव की सर्वोच्च अभिलाषा है। चाहे वह धन कानूनी तौर पर कमाया जाए अथवा गैर कानूनी तौर पर। इसी गैर कानूनी तौर पर धन कमाने का दूसरा नाम भ्रष्टाचार है।

६. लोकसेवकों द्वारा शीघ्र निर्णय लेने से बचने व टालने की प्रवृति

७. रिश्वत लेने व देने वालों के मध्य गठजोड़ तथा रिश्वत के पुख्ता साक्ष्यों का अभाव।

८. सरकारी कमिर्यो की गोपनीय रिपोर्ट

९. दिन प्रतिदिन महंगे होते जा रहे निर्वाचन

भ्रष्टाचार के निरोध के लिए सुझाव

१. भारत के अधिकतर कानून बहुत पुराने हैं। आजकल की समस्याएं भविष्य की महत्वकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए नए सिरे से बनाया जाना चाहिए।

२. प्रशासनिक ढांचे और नियमों को सरल बनाया जाना चाहिए ताकि काम अविलंब और न्यायपूर्ण ढंग से हो सके।

३. प्रशासनिक अधिकारियों की विवेकाधिकार शक्तियों का क्षेत्र स्पष्ट परिभाषित किया जाए और उसे संकुचित भी किया जाए।

४. कर प्रणाली सीधी व सरल हो तथा कर वसूलने के स्रोत भी निश्चित हों।

५. चुनाव प्रणाली में आमूल संशोधन हो।

६. लाइसेंस व परमिट प्रणाली समाप्त की जाए।

७. प्रशासनिक ढांचें में सुधार के साथ साथ वेतन क्रम भी सुधारा जाए।

८. भ्रष्टाचार के दोषिओं की जॉच शीघ्रातिशीघ्र होनी चाहिए और अपराध की गंभीरता के अनुसार व्यक्ति को शीघ्र व कठोर दण्ड दिया जाए।

९. लोकपालों की नियुक्ति अविलम्ब होनी चाहिए और उन्हें जॉच संबंधी तथा न्यायिक अधिकार दिए जाने चाहिए।

१०. आनेवाली पीढ़ियों के चरित्र निर्माण की विशिष्ट संस्थाएँ विकसित की जानी चाहिए इसमें शिक्षा प्रणाली को सुधारना होगा।

११. सांस्कृतिक क्षेत्रों के मूल्यों में स्पष्टता लानी होगी। यह कार्य समाजसेवी संस्थाएँ अनुशासन व प्रचार द्वारा करें।

१२. शीर्षस्थ राजनेताओं और अफसरों को अपने आचरण को सभी संदेहों से ऊपर सिद्ध करना होगा।

सन्दर्भ

१. डेविस के., 'ह्यूमन सोसायटी', दि मैकमिलन कं., न्यूयार्क, १९६९, पृ. ६२१

२. उद्धृत, इन्द्रजीत कौर, 'लोक प्रशासन', साहित्य भवन आगरा, पृ. ५७१

३. आहूजा राम, सामाजिक समस्याएँ, २०१० रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ.-४३३

४. इलियट और मैरिल, 'सोशल डिसआर्गेनाइजेशन', हार्पर एवं ब्रदर्स, न्यूयार्क, १९५०, पृ. ५२०

५. प्रतियोगिता दर्पण मई २०११ पृष्ठ सं०-

६. आहूजा राम, 'सामाजिक समस्याएँ' रावत पब्लिकेशन, जयपुर, २०१० पृ.-४३५

७. प्रतियोगिता दर्पण मई २०११

८. प्रतियोगिता दर्पण जुलाई २००६ पृ. २२००

९. आहूजा राम, पूर्वोक्त, पृ. ४३८

१०. वही, पृ. ४३८

११. प्रतियोगिता दर्पण, मई, २०११, पृ. १८५७

१२. प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई २००६ पृ. २२०२

बालश्रम : समाजार्थिक एवं शैक्षणिक विवेचना

❑ डॉ० उमा बहुगुणा

भारत में, जहां की लगभग एक तिहाई जनसंख्या घोर निर्धनता में जीवन यापन कर रही है, बालश्रम एक गंभीर समस्या है। यह समस्या बड़ी जटिल है क्योंकि इसमें श्रमिक और मालिक दोनों ही पक्षों की स्वार्थ सिद्धि निहित होती है। बाल श्रमिक अपने परिवार की निर्धनता के कारण परिवार का पेट भरने के लिए श्रम करने को बाध्य होते हैं तो मालिक वर्ग सस्ते श्रमिक पाने के स्वार्थ में बाल श्रम को बढ़ावा देते हैं। प्रस्तुत लेख बाल श्रम की समाजार्थिक एवं शैक्षणिक विश्लेषण का एक प्रयास है।

हमारे देश में बाल श्रम समस्या कोई नई समस्या नही है वरन् ये काफी पुरानी है। जिस उम्र में बच्चों को खेलना, कूदना व पढ़ना चाहिए उस उम्र में उन्हें पारिवारिक, सामाजिक व आर्थिक कारणों से बालश्रम जैसी जटिलता में फंसना पड़ता है। बचपन इंसान का सबसे खूबसूरत पल होता है। जब इंसान को न तो किसी बात की चिंता होती है और न ही कोई जिम्मेदारी होती है। हर व्यक्ति अपने बचपन की खूबसूरत मस्तियों, शैतानियों, खेल कूद आदि के साथ व्यतीत करना चाहता है, परन्तु सभी का बचपन ऐसा ही हो यह आवश्यक नहीं है।

बचपन मनुष्य की सबसे अनमोल अवस्था होती है। इस समय मनुष्य को देखभाल, प्रेम सहानुभूति व सुरक्षा संरक्षण की एक साथ आवश्यकता होती है। यही समय है जब उसको सही पथ व पथ प्रर्दशक की भी आवश्यकता होती है। बाल श्रमिक की श्रेणी में सामान्यतः १४ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को रखते हैं वे जीवनयापन हेतु यदि मेहनत, मजदूरी करते हैं और उसके एवज में पारिश्रमिक पाते हैं तो वे बाल श्रमिक कहलाते हैं। पारिश्रमिक का स्वरूप पैसों के रूप में या कपड़े, अन्न या आवश्यक वस्तुओं के रूप में भी हो सकता है। ''बाल श्रमिक का तात्पर्य १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों द्वारा किये जाने वाले उस श्रम से है, जिसका उद्देश्य मजदूरी या वेतन के द्वारा अपने और अपने परिवार का पूर्ण रूप से भरण पोषण करना है। ''भारत जैसे देश जो कि विकासशील देशों की गिनती में आते हैं, वह जहाँ गरीबी रेखा से नीचे ३० से ४० करोड़ लोग आते हैं दुनिया में यदि आंकड़ों को उठा कर देखा जाये तो बाल मजदूरो की संख्या सबसे अधिक हमारे देश में ही है।

शोध प्रारूप/शोध कार्य क्षेत्र : प्रस्तुत अध्ययन में नवोदित प्रदेश उत्तराखण्ड के पौड़ी गढ़वाल जिले के श्रीनगर तहसील व श्रीकोट गंगानाली जो कि श्रीनगर (गढ़वाल) से मिला हुआ है के उद्योगों, होटलों, घरों में कार्यरत बाल श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक समस्याओं के अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। पौड़ी जनपद के मुख्य शहर श्रीनगर (गढ़वाल) श्रीकोट गंगानाली जिसकी जनसंख्या लगभग ३० से ३५ हजार के लगभग है। श्रीनगर गढ़वाल का अपना पौराणिक महत्व है, यह टिहरी नरेश की राजधानी भी रही है। वर्तमान में यह नगर पालिका परिषद क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। श्रीनगर अलकनन्दा नदी के किनारे पर बसा हुआ है व उसका क्षेत्र लगभग ५ किलोमीटर लम्बाई में अलकनन्दा नदी के साथ-साथ ही है। श्रीनगर में हेमवती नन्दन बहुगुणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय जिसमें इन्जीनियरिंग कालेज, बी.फार्मा, एम.बी.ए. व अन्य प्रोफेशनल कोर्सेस संचालित होते हैं व श्रीकोट गंगानाली भी एक पंचायत क्षेत्र है,। श्रीनगर के साथ मिला होने के कारण इसका भी शहरीकरण हो चुका है। श्रीकोट में वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली मेडिकल कालेज है। श्रीनगर शहर में पॉलीटेकनिक, आई.टी. आई. व वर्तमान में एन.आई.टी. का भी शुभारम्भ हो चुका है। यह कहना उचित होगा कि श्रीनगर गढ़वाल जिसमें श्रीकोट गंगानाली का क्षेत्र भी सम्मिलित है। एजुकेशनल हब के रूप में विकसित हो चुका है। अतः शहर में जगह-जगह से लोगों द्वारा यहाँ बसना प्रारम्भ किया गया है व जनसंख्या घनत्व पहाड़ों के सापेक्ष काफी अधिक है। इसी कारण यहां होटल उद्योग, आईसक्रीम उद्योग काफी फलफूल रहे हैं। अधिकांश बाल श्रमिक होटलों व आईस्क्रीम फैक्ट्री व घरों में घरेलू नौकर के रूप में कार्यरत हैं।

शोधार्थिनी द्वारा ५० बाल श्रमिकों, जिसमें मुख्यतः होटल, लॉज, कुटीर उद्योगों, घरों में घरेलू नौकर के रूप में कार्यरत हैं, शामिल किया गया है। निर्दशन विधि के माध्यम से ५० बाल श्रमिकों को चुना गया है तथा उनकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक समस्याओं को समझने का प्रयास किया गया है। अध ययन के अंतर्गत आंकड़े संकलित करने हेतु अनुसूची विधि का प्रयोग किया गया है।

❑ असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, हे.न.ब.ग.वि.वि. श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि ५ से १० आयु वर्ग के बालकों को मासिक वेतन लगभग रू० ६०० मात्र दिया जाता है। यदि वे साथ ही रहते हैं तो उनको रहने व खाना भी उपलब्ध करवाया जाता है। बालिकाओं की भी कमोवेश यही स्थिति है उनको लगभग रू० ५०० वेतन दिया जाता है। १० से १४ वर्ष के आयु वर्ग के बालक जो कि अधिकांशतः शहर में स्थित होटलों में कार्यरत हैं उनको रू० २००० से रू० ३००० तक का वेतन मिलता है व रहने व खाने की व्यवस्था होटलों में ही होती है। बालिकायें अधिकांशतः घरों में कार्यरत हैं उनको लगभग रू० १००० से रू० १५०० तक का वेतन प्राप्त होता है। क्योंकि यह अध्ययन उत्तराखण्ड में आयी आपदा के बाद किया गया है और इस समय बेरोजगारी व होटल उद्योगों में आयी मन्दी के कारण बाल श्रमिकों की अधिकता के कारण बाल श्रमिकों का वेतन भी होटल व्यवसायियों द्वारा कम करके दिया जा रहा है।

तलिका - ३.
बाल श्रमिकों की शैक्षिक स्थिति

शैक्षिक योग्यता	बालक	बालिका	कुल योग
निरक्षर	०३ (६.००)	०२ (४.००)	०५ (१०.००)
१ से ५ वीं तक	०६ (१२.००)	०४ (८.००)	१० (२०.००)
६ से ८ वीं तक	२७ (५४.००)	०८ (१६.००)	३५ (७०.००)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन में निरक्षरों का प्रतिशत कुल १० है व इनमें ६ प्रतिशत बालक व ४ प्रतिशत बालिकायें है। १ से ५ वीं तक भी शिक्षा अर्थात प्राथमिक शिक्षा तक शिक्षित बाल श्रमिकों का कुल प्रतिशत २० प्रतिशत है जिसमें बालकों का प्रतिशत १२ व बालिकाओं का प्रतिशत ८ है। ६ वीं से ८ वीं शिक्षा तक की शिक्षा प्राप्त बाल श्रमिकों का प्रतिशत ७० है व जिसमें से ५४ प्रतिशत बालक व १६ प्रतिशत बालिकायें हैं। क्योंकि उत्तराखण्ड में ग्राम स्तर पर प्राथमिक विद्यालय खुले